THE WEARY TRAVELLER

The artist himself is seen under the shadow of a tree at the out-skirts of the Lord's town all weary and tired with heavy burden on his back all along struggling in the darkness. The few green leaves in front on the tree depict his feeble hope that perhaps he may be pardoned.

कला की ओर

(भारतीय चित्रकला सहित)

लेखक

प्रोफ़ेसर एम० के० वर्मा

अध्यक्ष, चित्रकला विभाग,

आगरा कालिज, आगरा।

१९५२

प्रकाशक

पापुलर बुक डिपो, आगरा।

प्रथम संस्करण] [मूल्य ५ रु० ८ आना

PREFACE

This short treatise **Kala-Ki-Oar** (An Approach to Art) is the outcome of the necessity of a book which might include all such material as is the requirement not only of various Boards of Education, Art institutions and Universities but of the common man also who wants to know something about the art of Painting in Hindi.

If the aim with which the book is written is served the author will only feel satisfied.

The opening chapters of the book prepare a ground fo· the History of Indian Painting.

The differentiation between different schools of Indian Painting is beautifully dealt with.

Useful information about modern art and artists is also included.

Last Chapters provide basic principles of still life Painting, Figure Drawing, Landscape Painting, Design and Postering and Painting f·om imagination.

Endeavour has been made to make the language of the book simple and lucid, I admire the help given to me in the matter by Shri Ram Krishna Sahitya Ratna.

The book contains over 90 illustrations and the author is indebted to his students who have helped in the preparation of drawings and to the following institutions and gentlemen for permitting to reproduce the following paintings in the book :—

1. Department of Archeology Patna—6.
2. Archeology Director of Madhya Bharat Government Gwalior—30, 31, 32 and 33.
3. Bharat Kala Bhawan Benaras--36 ,39.
4. Victoria and Albeart Museum London—37.
5. Chief Supdt. Archeology and Museum. Govt. of Rajasthan, Jaipur Museum--38, 40, 41 and 42.
6 Shri Nand Lal Bose—43.
7. „ Asit Kumar Haldar—44.
8. „ B. C. Gue—61
9. „ K. K. Mukerjee--92

THE AUTHOR.

विषय-सूची

			पृष्ठ
१—आकार	....	....	१— २
२—कला	....	....	३— ५
३—भारतीय कला	....	....	६— ९
४—भारतीय चित्रकला के अंग		....	१०— १८
५—प्राचीन भारतीय चित्रकला		....	१९— २५
६—बौद्ध चित्रकला	....	....	२६— २८
७—अजंता के भित्तचित्र		....	२९— ४३
८—अजंता शैली की विशेषताएँ		....	४४— ६४
९—बौद्ध चित्रकला की अन्य शैलियाँ		....	६५— ७३
१०—मध्यकाल की चित्रकला		....	७४— ८०
११—मुग़ल चित्रकला	....	....	८१— ८५
१२—मुग़ल शैली के चित्र		....	८६— ९४
१३—मुग़ल शैली	....	....	९५—१०२
१४—राजपूत चित्रकला	....	....	१०३—१०६
१५—राजपूत चित्रकला के चित्र		....	१०७—११५
१६—राजपूत शैली	....	....	११६—१२२
१७—पुनरुत्थान काल	....	....	१२३—१२५
१८—पुनरुत्थान काल की चित्रकला		....	१२६—१२८
१९—पुनरुत्थान काल के चित्रकार		....	१२९—१४०
२०—आधुनिक काल में चित्रकला		....	१४१—१४१
२१—वस्तु-चित्रण	....	....	१४२—१४७
२२—मानव-चित्रण	....	....	१४८—१६२
२३—प्रकृति-चित्रण	....	....	१६३—१७१
२४—डिजाइन और पोस्टर चित्रण		....	१७२—२००
२५—काल्पनिक चित्रण	....	....	२०१—२०४

१—आकार
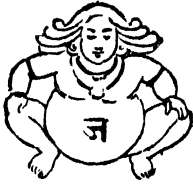
ब हमने संसार में जन्म लिया, किसी प्रकार के मानसिक विचार, भविष्य के मानसिक विकास के लिये हमें प्राप्त न थे। रूप-गंध-स्पर्श आदि के दृष्टिगत विचार उस समय हममें नहीं थे। केवल शरीर और मस्तिष्क सम्बन्धी आंगिक अवस्थाएं ही वस्तु-बोध का कारण होती थी।

ये अवस्थाएं ही वातावरण के द्वारा हमें वाह्यजगत से परिचित कराने लगीं। वासना रूप से हममें भिन्न-भिन्न वस्तुओं के छायाचित्र अंकित होने लगे और उसी के अनुसार हम अनुभव करने लगे। नवजात शिशु आरम्भ में जब उत्पन्न हुआ अपनी माँ को उसके वक्ष को छूकर ही, ज्ञान-तंतुओं से निर्मित उसके मनोगत आकार द्वारा ही पहचान सका। इस प्रकार वह जन्मजात (Born) कलाकार आकारों के मनोगत चित्रण की, जिनमें उसके वातावरण के भावों, अनुभावों और चेष्टाओं का प्रकाशन भी रहता था, इस स्वाभाविक और समस्त संसार की सामान्य भाषा के द्वारा वाह्य जगत का ज्ञान संचय करने लगा।

इन मनोगत चित्रों से, जो मनुष्य को आस-पास के वातावरण की सौन्दर्य पूर्ण घटनाओं और हलचलों में सब से अधिक प्रिय लगे, सौन्दर्य-चयन का प्रश्न उपस्थित हुआ। सरिता में पड़ती हुई भँवरों, झरनों की प्रवाहमय गति, मृगों की छलाँग, बिल्ली की उठी हुई पूँछ आदि में उसे सहज ही आकर्षण प्रतीत होने लगा। आरम्भ में मनुष्य का अनुभव थोड़ा था और उसका विस्तार भी अधिक नहीं था। अब ज्यों-ज्यों उसकी वृद्धि होने लगी उसके अनुभव का क्षेत्र भी बढ़ गया। अब उसके मनोगत चित्रों की चित्रशाला भरने लगी और उसकी अंतरात्मा अपनी अनुभूति की किसी गतिपूर्ण (Rhythmical) साधन द्वारा प्रगट करने को अधीर हो उठी। उसके प्रथम वाक्य भद्दे, मिट्टी के ठीकरों, शिलाओं और रहने की गुफाओं की दीवारों पर भावानुगामिनी रेखा और आकार के रेखाचित्र थे।

यह चित्रों का आलेखन धीरे-धीरे वर्णों के आलेखन का कारण हुआ जो कुछ ही समय में नियमित और आलंकारिक हो गया और सामान्य लोगों में परस्पर सम्पर्क का साधन बना।

किन्तु अन्तरात्मा की भूख को शांत करने के लिये यह सौन्दर्य प्रेमी मनुष्यों पर छोड़ा गया कि वे आत्मा की उच्चता को सांकेतिक आकारों के विकास द्वारा प्रगट करें और उनके प्रयोग से अपने मकानों, गिर्जाघरों, मंदिरों और अपने देवताओं को सुशोभित करें, जो निश्चय ही महान पुरुषों का काम है, जो काल्पनिक है और सामान्य व्यक्तियों से प्राप्त नहीं हो सकता। यह एक परिश्रम या प्रेम था और कठिन निरीक्षण होने पर भी कभी भार-स्वरूप नहीं हुआ।

२—कला

ला कलाकार की रस-अवस्था का प्रकाशन है । वह केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं वरन् एक साधना है । कला सौन्दर्य है और सौन्दर्य परमात्मा है । पर-मात्मा सब वस्तुओं में विद्यमान है, उसकी इस विद्यमानता का प्रकाशन ही कला है । चित्रकार अपनी अनुभूति के अनुसार अपनी अन्तरात्मा की तृप्ति के लिये जब इस सौन्दर्य का चित्रण करता है तो उसे ध्यान नहीं कि उसके पीछे कौन खड़ा है और वह कहां बैठा है । वह तो सौन्दर्य में मुग्ध है । उस समय तो उसकी आत्मा समस्त बाह्य जगत को छोड़ कर एक अलौकिक स्थिति में, पदार्थों, क्रियाओं तथा व्यापारों आदि के प्रवाह में लीन रहती है । उस अवधि के लिये उसकी ऊपरी सत्ता का लोप हो जाता है । इस प्रकार मानव-हृदय की अनुभूति होकर कला धर्म के बहुत निकट आ जाती है । रसा-वस्था के इसी सौन्दर्य की अनुभूति स्वयं भगवान् बुद्ध के उपदेश के अनुसार स्वार्थ-सम्बन्धों से ऊपर उठा कर पूर्ण आनन्द और सौन्दर्य के लोक में ले जाती है । वह हमें ज्ञान की ओर प्रोत्साहित करती है और अंतिम निर्वाण के लिये प्रथम सोपान है । चीन के प्रायः सभी महान कलाकार योगी थे, बौद्धों ने भी कला को सदैव योग रूप में देखा था, तभी वे अपनी उच्चकोटि की रसानुभूति द्वारा संसार के अद्वितीय चित्रों का सृजन कर सके । कला और धार्मिक जीवन का इससे अधिक महत्व और क्या हो सकता है कि बौद्ध भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध के प्रति जिन असीम भावों और अनुभूतियों को, शिल्प, चित्र, वस्तु, दर्शन, काव्य में ससीम रूपों में व्यक्त किया वे एशिया को शताब्दियों तक नवीन संस्कृति और सभ्यता का संदेश देते रहे ।

कला आलस्य पूर्ण क्षणों के व्यतीत करने का साधन नहीं। किसी चित्र को देखते समय मनोरंजन अवश्य होता है, पर इसके अतिरिक्त और भी कुछ होता है और वास्तव में यही सब कुछ है। जो लोग कला को केवल विलास की सामग्री समझते हैं वे उसके सबसे बड़े तत्व का निरादर करते हैं। वे नहीं जानते कि कला उन में किस प्रकार नवजीवन संचार कर सकती है। उसमें रस-सिक्त करने की कितनी शक्ति है और मनुष्य मात्र की शाश्वत भावनाओं से वह किस हद तक सम्बन्ध बनाये हुए हैं।

कला हृदय पर नित्य प्रभाव डालने वाली घटनाओं और व्यापारों को हमारी भावना के सामने लाकर जिस रस-लोक का सृजन करती है वह कितना मर्मस्पर्शी होता है—उसे सच्चे कलाकार ही जान सकते हैं। इन घटनाओं और व्यापारों में केवल बाह्य सौन्दर्य ही नहीं होता उनमें अंतः प्रकृति की भव्य झांकी भी मिलती है। यही कारण है कि कला असुन्दर को भी सुन्दर रूप में ग्रहण करती है। जिस प्रकार विस्तृत वनस्थली, बहते हुये हिम-खण्ड तथा रमणी का रूप-माधुर्य हमें सौन्दर्य-विभोर कर देता है उसी प्रकार मानव हृदय के अनेक भाव, करुणा, उदारता, कृतज्ञता आदि की भावनाएँ भी हृदय पर निश्चित प्रभाव रखती हैं। दरिद्र की निर्जन झोंपड़ी के टिमटिमाते हुए दीपक में, स्मशान में बैठी हुई विधवा के रुदन में, तथा महाराज श्रीकृष्ण के कंस दलन के वीभत्स दृश्य में भावना का जो सौन्दर्य है उस पर एक क्षण कौन मुग्ध न होगा? काली की कुरूपता और भयानकता में भावना का जो सौन्दर्य होता है वह उसको वाह्य जगत में असुन्दर होते हुए भी कला-जगत में सुन्दर बना देता है।

चित्रकला रस-अवस्था की अनुभूति होने के कारण आनन्द-स्वरूप होती है। इसी से उसे ब्रह्मानन्द-सहोदर कहा जाता है।

आनन्द-पक्ष की इस महत्ता के कारण ही व्यक्ति के लिये उसका महत्व स्पष्ट हो जाता है। आज के युग के मरुस्थली जीवन में वही एक प्राणदायिनी गंगा है, वही जीवन में सौष्ठव ला सकती है। समाज और जाति से इसका घनिष्ट सम्बन्ध है। सामाजिक जातीय चित्तवृतियाँ कला में स्थान पाती हैं और कला की उन्नति से उस जाति या देश विशेष की सांस्कृतिक उन्नति का पता चलता है। इन्हीं के आधार पर प्राचीन सभ्यताओं की खोज होती है। कला का आर्थिक महत्व भी नहीं भुलाया जा सकता। प्राचीन काल में "गिल्डों" की प्रथा देशों की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को बनाये रखने में बहुत सहायक थी। आज कल कला के विभिन्न प्रकार के स्वरूप जिनमें व्यापारिक (विज्ञापन, पोस्टर, कवर डिजायन आदि बनाना) तथा आलंकारिक (विभिन्न प्रकार के बेल बूटे बनाना) कलाएँ आधुनिक व्यवसायिक युग में भी आर्थिक समृद्धि के एक महत्वपूर्ण अंग हैं।

कलाकार अपने व्यक्तित्व से ही सीमावद्ध नहीं होता वह अपने समय की प्रचलित प्रवृतियों से भी प्रभावित होता है। ये प्रवृतियाँ किसी जाति विशेष की धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक दशाओं पर निर्भर होती हैं और कभी न टूटने वाली शृंखला में उनका विकास होता रहता है। इस प्रकार एक निश्चित अवधि में जातीय कला का एक विशिष्ट स्वरूप निर्मित हो जाता है। विभिन्न देशों की अपनी अपनी राष्ट्रीय कलाएँ हैं जिनका निर्माण उनकी अपनी जातीय परम्पराओं और रूढ़ियों के आधार पर हुआ है।
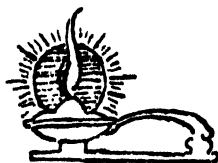
३–भारतीय कला

भारतीय कला को उसके सच्चे अर्थ में समझने के लिये उसकी आत्मा और लक्ष्य को समझना आवश्यक है। भारतीय कलाकार के लिए वह एक पवित्र साधना है, उसकी रस-अवस्था का अलौकिक आनन्द है। योरप के लिए वह एक दम लौकिक है, उसकी सौन्दर्य-लिप्सा का एक उपकरण है; मनोरंजन का एक अंग है। इन दो विरोधी उद्देश्यों के सहारे-सहारे इनकी अनेक विशेषताओं का विकास होता है।

कल्पना-प्रियता

भारतीय कलाकार के लिए चित्रकला चित्रकार की रस-अवस्था का प्रकाशन होने के कारण काल्पनिक है। उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह पूर्णतया यथार्थ (Realistic) वैज्ञानिक प्रतिकृति द्वारा प्रभावित हो। जहाँ भारतीय कला भाव-लोक की इस काल्पनिकता को लेकर चली है वहाँ योरपीय कला अत्यधिक यथार्थपूर्ण है। उसका आधार नग्न यथार्थ है। पर इस नग्न यथार्थ में कला कहाँ? वह तो केमरा की प्रतिकृति (Copy) मात्र हुई!

सामान्य रूपों का विकास

भारत की इस कल्पना-प्रियता और योरप की इस यथार्थ-प्रियता के कारण दोनों जगह के शरीर-शास्त्र (Art-anotomy) सम्बन्धी आदर्श भिन्न-भिन्न हैं। पश्चिमी कलाकार शरीर के अंग-प्रत्यंग को उभार कर व्यक्ति विशेष के वैयक्तिक रूप (Individual Shape) का चित्रण करता है। वह विषयगत (Subjective) वैयक्तिकता (Individuality) को महत्व देता है। भारतीय कला में विभिन्न

दृष्टिकोणों के आधार पर आकृतियों को सामान्य (Generalise) बना दिया गया है। उदाहरण के लिए शरीर के गठन के अनुसार देव, असुर, बाल आदि विभाग किये गये हैं जिनके अलग अलग अनुपात हैं। भंगिमाओं (Pose) के अनुसार अभंग, समभंग, त्रिभंग, अतिभंग विभाग किये गये हैं, जिनकी रचना के निश्चित नियम हैं। अजंता के चित्रों में देवता, गंधर्व तथा मनुष्य विभिन्न अनुपातों में अंकित किये गये हैं जो उनकी नैतिकपूर्णता या पतन की ओर संकेत करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय कला में योरपीय कला से विपरीत सामान्य रूपों (General Forms) का विकास हुआ है।

आलंकारिता

भारतीय आकृतियों में आलंकारिता (Ornamentality) रहती है। सत्य (Truth) के साथ उसमें सुन्दरम् (Beautiful) की ओर आग्रह होता है। वस्तु का ज्यों का त्यों अंकन सर्वदा सुन्दर नहीं होता। इसलिये यदि वस्तु के वास्तविक रूप को थोड़ा मोड-तोड़ कर उसे अलंकृत बना कर उसमें सौन्दर्य आ जाय तो इसमें दोष कहाँ? भारतीय कला में उपमाओं का प्रयोग इसका एक उदाहरण है। भारतीय शरीर-शास्त्र में आँखें कमल की पंखड़ी के समान सजल बनाई जाती हैं। कमर सिंह की भाँति पतली होती है। हाथ, पैर, गले, जाँघ आदि के लिए भी विभिन्न उपमान काम में लाये जाते हैं। इस प्रकार आकृतियों में आलंकारिकता का समावेश करके उन्हें सुन्दर बना दिया जाता है।

अंतः प्रकृति का अंकन

भारतीय कला में बाहरी यथार्थ की ओर कम और भीतरी यथार्थ की ओर अधिक ध्यान रहता है। दर्शक को भारतीय कला में अंतः प्रकृति के जीते-जागते चित्र मिलेंगे। शास्त्रों में रस-निष्पत्ति की जो बात कही जाती है उसका अंतः प्रकृति से सम्बन्धित चेष्टाओं

तथा हाव-भावों से सीधा सम्बन्ध है। परन्तु योरपीय कला में माँसल प्रभाव इतना अधिक होता है कि अंतः प्रकृति का सौन्दर्य उसमें छिप जाता है। और व्यक्ति सूक्ष्म रसानुभूति से वंचित रहता है। भारतीय कला में शारीरिक अंगभंगिमाओं और मुद्राओं का अंकन और तदनुकूल रसों का सृजन सब से अधिक महत्व के विषय हैं।

काल्पनिक दृश्य-योजना योरपीय कला अत्यधिक यथार्थ है इसलिए उसका दृश्य-चित्रण वास्तविक (Realistic) और आकस्मिक (Accidental) होता है। योरपीय कलाकार बहुधा एक दृश्य को एक निश्चित दृष्टिकोण से अंकित करता है। इस के विरुद्ध भारतीय कला का दृश्य-चित्रण काल्पनिक होता है। उसमें विभिन्न समयों के एक ही स्थान के चित्र, विभिन्न स्थानों के एक ही समय के चित्र और विभिन्न समयों के विभिन्न स्थानों के चित्र एक साथ अंकित किए जाते हैं। इसके लिए या तो चित्रको कुछ ऊँचाई से देखा जाता है या चित्र की रचना एक दृष्टि विन्दु (Point of Vision) से न करके अनेक दृष्टि विन्दुओं से की जाती है। संक्षेप में, भारतीय कलाकार दृश्य-रचना एक विशेष दृष्टि विन्दु से न करके अनेक दृश्य विन्दुओं से दृश्य को खूब घूम-फिर कर देख कर करता है।

रेखांकन भारतीय-कला की सबसे बड़ी विशेषता उसका रेखांकन है। यहाँ रेखाओं से मतलब आकार-बोधक (Form expressing) रेखाओं से नहीं है किन्तु गतिशील और सशक्त रेखाओं से है जो भाव के साथ साथ अंकित की जाती हैं। भारतीय रेखा सर्व शक्तिमान होती हैं। भारतीय कला में केवल रेखाओं द्वारा ही प्रत्येक प्रकार की अंग भंगिमाएँ मुद्रा तथा वस्तुगत गोलाई, उभार पर्सपैक्टिव के भाव सभी कुछ स्पष्ट कर दिये गये हैं। इन रेखाओं में सर्वत्र एक सूक्ष्मता रहती है जो उसको आत्म-सौन्दर्य प्रदान करती

है। भारतीय रेखाएँ योरपीय यथार्थ की भाँति मांसल अनुभव नहीं कराती वरन् सूक्ष्म आनन्द प्रदान करती हैं। यही कारण है कि भारतीय कला की नग्न से नग्न आकृतियाँ भी घृणित और अश्लील नहीं हो पातीं।

छाया-प्रकाश रहित अमिश्रित रंग-विधान भारतीय चित्रकला का रंग-विधान सादा होता है। रंग बहुधा अमिश्रित होते हैं तथा वे लेप की तरह चढ़ाए जाते हैं। छाया-प्रकाश के नियमों का पालन नहीं होता। स्थानीय गोलाई (Local roundness) का भाव एक ही रंग को किनारों पर कुछ गहरा तथा बीच में हलका दिखा कर दे दिया जाता है। परन्तु किसी एक प्रकाश विन्दु (Point of light) को मान कर चित्र-रचना नहीं की जाती। भारतीय कलाकार की दृष्टि में प्रकाश के विशृंखल टुकड़े कभी भी कला का उचित मापदण्ड (Scale) नहीं हो सकते। इस सम्बन्ध में अनिवार्य रूप से आत्म-प्रकाश की अपेक्षा रहती है। भारतीय कला का रंग-विधान उसी आत्म-प्रकाश से उद्भूत होता है।

धार्मिकता भारतीय कला का धर्म से अभिन्न सम्बन्ध है। 'चित्रसूत्र' में चित्रकला को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाली कहा गया है। अकबर और अबुलफ़ज़ल के दृष्टिकोण में चित्र-रचना में डूबा हुआ व्यक्ति उस असीम की ही झाँकी देखता है। भारतीय कला के विकास के पीछे धार्मिक प्रेरणाओं का प्रमुख भाग है। बौद्ध-काल में धर्म के सहारे-सहारे जिस कला-परम्परा का विकास हुआ, वह मुग़ल और राजपूत कलाओं की लौकिकता में भी पौराणिकता लाती रही और आगे चलकर आधुनिक युग की निश्चेष्टता में भी एक स्पन्दन लाने का प्रयत्न किया। संक्षेप में, भारतीय कला आदि से लेकर अंत तक धार्मिक रही है।

४—भारतीय चित्रकला के अंग
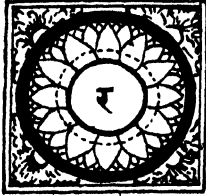
स-सृजन कला की आत्मा है पर आत्म-सौन्दर्य से ही काम नहीं चलता, रूप रंगों के वाह्य उपादानों की भी आवश्यकता होती है। यहीं से कला के कला-पक्ष का उदय होता है, यहीं पर कला में नियम-निर्माण की नींव पड़ती है। कला के भाव-पक्ष और कला-पक्ष का घनिष्ट सम्बन्ध है। इन्हीं दोनों के समन्वय में कला के सच्चे रूप का विकास होता है। चाहे एक चित्रकार कितना ही भावुक क्यों न हो पर यदि उसकी रचना में लावण्य (Grace) नहीं है, आकारों में आलंकारिता नहीं आ पाई या उसकी चित्र रचना का ढंग दूषित है, उसमें अभीप्सित सौन्दर्य नहीं आ सका तथा प्रभावोत्पादकता और आकर्षण के सिद्धान्तों का अनुसरण नहीं हुआ तो उसकी कला निश्चय ही अपना मूल्य खो बैठेगी। भारतीय चित्रकला में आकर्षण और सौन्दर्य के इन तत्वों का क्या स्थान है यहाँ हम इसी का विवेचन करेंगे।

वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में सर्वप्रथम चित्रकला के ६ अंगों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि वात्स्यायन का जीवन काल ईसा से दो शताब्दि पश्चात् का है परन्तु ये अंग प्रसंग रूप से दूसरे ग्रन्थों से लिये ज्ञात होते हैं और वात्स्यायन के जीवन-काल से कहीं पुराने हैं। ये अंग रूप-भेद, प्रमाण, भाव, लावण्ययोजना, सादृश्य तथा वर्णिकाभंग है। बाद की बौद्ध चित्र-शैली में इन अंगों का स्पष्टतः प्रयोग हुआ है यहाँ हम विस्तार से उनका कथन करेंगे।

रूप-भेद:-सब प्रकार की आकृतियों और उनकी विशेषताओं की पहचान
प्रमाण:—अनुपात तथा शरीर-रचना।
भाव:—मस्तिष्क और हृदय के शरीर पर पड़े प्रभाव का अंकन।
लावण्ययोजना:—वाह्य सौन्दर्य जो रंगों के संगतीय विधान, उचित संयोजन आदि द्वारा प्राप्त किया जाता है।
सादृश्य:—अनुरूपता।
वर्णिकाभंग:—तूलिका और रंगों के व्यवहार करने का कलापूर्ण ढंग।

ये अंग इतने व्यापक हैं कि भारतीय कला का आजतक प्राप्त समस्त चित्रकला सम्बन्धी लक्षण-साहित्य इनके अंतर्गत आ जाता है। शिल्प-शास्त्र, चित्रलक्षण तथा चित्रसूत्र में वर्णित सामग्री इनके अन्दर भी आती है। अतः यहां हम इन्हीं ६ अंगों को प्रधान मान कर चलेंगे।

रूप-भेद रूप-भेद से आशय, जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है, सब प्रकार की आकृतियों और उनकी विशेषताओं की पहचान से है। भारतीय आकृतियाँ 'सामान्य' (Type) होती हैं। व्यक्ति की सामान्य विशेषताओं को लेकर ही आकृतियों की रचना की जाती है। कोई भी विशेष मानवीय आकृति सम्पूर्ण मानव-जाति का उचित मान (Standard) नहीं हो सकती। इसी से सम्पूर्ण मानव-आकृतियों को उनकी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जाता है। शिल्प-शास्त्र में एक साधारण मनुष्य, आसन लगाये देवता तथा गंधर्व उनके वाहन आदि सब अंकित करने के अलग-अलग नियम हैं। इन्हीं के आधार पर आगे चलकर बौद्ध और हिन्दू कलाओं ने अपना स्वाभाविक विकास किया है। प्राचीन ग्रन्थों में सात्विक, राजसिक और तामसिक आकृतियों का उल्लेख हुआ है। आसन लगाये हुए योगी की मूर्त्ति सात्विक होगी, वाहन पर चढ़े हुए, आभूषणों से लदे हुए तथा मुख पर दृढ़ता और उदारता के भाव लिये हुए देवता की

आकृति राजसिक होगी, जब कि अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग में बनाई गई युद्ध की चेष्टाओं से पूर्ण मूर्ति तामसिक कहलायेगी। इसी प्रकार का वर्गीकरण बाल, कुमार, नर, क्रूर और असुर आकृतियों के सम्बन्ध में भी दिया गया है।

प्रमाण यद्यपि यह ठीक है, कि कला मनुष्य के भाव-जगत की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति है। जिस प्रकार बचपन में हमारे ऊपर रखा गया निरोध हमारे स्वतन्त्र विकास में वाधक नहीं कहा जा सकता, ठीक वैसे ही एक नवसिखिये चित्रकार को कला के आरंभिक ज्ञान के लिये नियमों में जकड़ जाना पड़ता है। भारतीय शास्त्रों में पांच प्रकार की प्रतिमाओं का उल्लेख है और उनके निश्चित अनुपात हैं:—

१—नर—मनुष्य—दस ताल*—जैसे नारायण, राम, नृसिंह, बालि, इन्द्र, भार्गव, अर्जुन।
२—क्रूर-भयानक—बारह ताल—जैसे भैरव, हयग्रीव, बाराह, रावण, कुम्भकर्ण, शुम्भनिशुम्भ।
३—असुर—राक्षसी—सोलह ताल।
४—बाल—पांच ताल—गोपाल, कृष्ण आदि।
५—कुमार—उमा, वामन आदि।

इसके अतिरिक्त एक और मापदण्ड है जो उत्तमनवताल कहलाता है। प्रतिमा के ६ भाग किये जाते हैं। पहला भाग-माथे के बीच से ठोड़ी तक; दूसरा-कंधे की हड्डी से छाती तक; तीसरा-छाती से नाभि तक; चौथा—नाभि से कूल्हे तक; पांचवा, छटा-कूल्हे से घुटने तक; सातवां, आठवां-घुटनों से टखनों तक तथा नवें भाग का चतुर्थांश-गला, चतुर्थांश-घुटनों की टोपी, चतुर्थांश-

* सर की लम्बाई १ इकाई मानी जाती है, यह एक ताल कहलाती है।

पैर तथा चतुर्थांश–माथे से चांद तक का भाग होता है। शरीर की चौड़ाई की दृष्टि से सिर १ भाग, गर्दन लगभग १/२ भाग, एक कंधे से दूसरे कंधे तक की चौड़ाई = ३ भाग, छाती = १ १/२ भाग, कटि = १ ३/४ भाग, कूल्हे = २ भाग, घुटने = १/२ भाग, पैर = १ १/४ भाग, हाथ = ४ १/२ भाग जिसमें कंधे से कुहनी = २ भाग, कुहनी से कलाई = १ १/२ भाग, हथेली = १ भाग। सम्पूर्ण मुख के तीन बराबर भागों में से एक, बीच माथे से आँख की पुतली तक; दूसरा, आँख की पुतली से नाक की नोक तक; तीसरा, नाक की नोक से ठोड़ी तक होता है। स्त्रियों की आकृति मनुष्य की आकृति से १/८ भाग छोटी होगी। बच्चों की गर्दन कम लम्बी तथा सिर अनुपात से कहीं बड़े होते हैं। अतः उनकी शरीर-रचना में विभिन्नता आ जाती है।

भाव शरीर पर पड़े हुए मानसिक भावों के चिन्ह एक चित्रकार के लिये बडे महत्व के हैं। ये चिन्ह भाव के अनुसार शरीर के प्रत्येक अंग में उत्पन्न हो जाते हैं। भारतीय कला में इन चिन्हों को सामान्य बनाने के लिये प्राकृतिक उपमाओं का व्यवहार हुआ है। भारतीय आकृतियों में चहरे प्रायः दो प्रकार के पाये जाते हैं। पहला, मुर्गी के अंडे के आकार का जिसका प्रयोग पूर्ण सात्विक भाव लाने के लिये किया जाता है। दूसरा, पान की पत्ती के आकार वाला—इस प्रकार के चहरे नैपाल और बंगाल में मिलते हैं। इसका प्रयोग चंचलता लाने के लिये किया जाता है। (चित्र नं० १)

स्थिरता
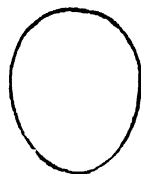
चञ्चलता
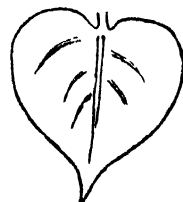
चित्र नं० १

आँख की रचना विभिन्न भावों को दिखाने के लिए विभिन्न प्रकार से की जाती है। सफरी मछली की आँखें चंचलता और अस्थिरता के लिए, खंजन पक्षी की आँखें प्रसन्नता के लिये, हरिण की आँखें सरलता और निरपराधिता के लिए तथा कमल की आँखें सात्विक शांति व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होती हैं। भौंहें भी भाव के अनुसार विभिन्न प्रकार की होती हैं। धनुषाकार भौंहों का प्रयोग स्त्रियों के लिए तथा नीम की पत्ती के आकार वाली भौंहों का प्रयोग मनुष्य के लिए किया जाता है। (चित्र नं० २)

चित्र नं० २

भाव विशेष में अंगों की निश्चित क्रियाएँ होती हैं। इसके अनुसार आकृतियाँ समभंग, अभंग, त्रिभंग और अतिभंग होती हैं। समभंग मूर्ति सीधी खड़ी बिना किसी ओर झुके हुए दिखाई जाती है, अभंग में थोड़ा भंग होता है कूल्हे वाला भाग बाईं या दाईं ओर और सिर दाईं या बाईं ओर झुका होता है। त्रिभंग में तीन भंग होते हैं। नीचे का हिस्सा कूल्हे से पैरों तक—दायीं ओर या बाईं ओर। गले से कूल्हे तक—बायें या दायीं ओर। सिर—दायें या बांये को। अतिभंग त्रिभंग का ही अतिरंजित रूप है। इसमें त्रिभंग के स्थानों को
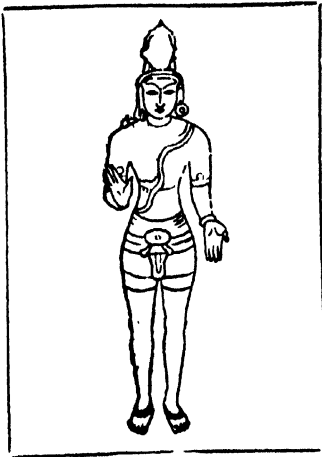
(चित्र नं० ३)

अधिक बायीं ओर या दायीं ओर कभी-कभी आगे-पीछे हटा दिया जाता है। (चित्र नं० ३)

लावण्ययोजना लावण्ययोजना का यह तत्व कला के अप्रत्यक्ष मानों से सम्बन्ध रखता है। लावण्य-योजना के लिए किन निश्चित नियमों का पालन किया जाय यह कहना कठिन है, फिर भी भारतीय कला में इस तत्व को ढूंढ कर उन अप्रत्यक्ष मानों की परीक्षा की जा सकती है। उदाहरण के लिए, भारतीय कला में जहाँ भी उंगलियों का अंकन हुआ है, वे कोमल और लचकदार अंकित हुई हैं। इसके अतिरिक्त रंगों की संगति, संयोजन का आकर्षक होना आदि भी चित्र का वाह्य लावण्य बढ़ाने में सहायक होते हैं।

सादृश्य सादृश्य से अर्थ आकृतियों की अनुरूपता से है। भारतीय चित्र-विधान में सादृश्य का महत्वपूर्ण स्थान है—"सादृश्यं प्रधानं परिकीर्तितम्"। पर भारतीय कला का यह सादृश्य कैमरा की यथार्थ प्रतिकृति नहीं होती। भारतीय कला का यह सादृश्य प्राकृतिक उपमानों से बहुत प्रभावित है। जिसमें सत्य को सुन्दरम् के साथ चलाने का आग्रह लक्षित होता है। भारतीय कला में शरीर रचना के लिए निम्नलिखित उपमानों का व्यवहार होता है। (चित्र नं० ४)

कान—गिद्ध का पर	कंधे—हाथी का सिर
नाक—तिल का फूल, तोते की चोंच	भुजा—हाथी की सूंड़
नथुने—सेम का बीज	हाथों की उँगलियाँ—सेम की फली या चंपक-कली
होंठ—कमल	धड़—डमरू, सिंह की कमर, गाय का चहरा
ठोड़ी—आम की गुठली	जंघा—केले के वृक्ष का तना, हाथी की सूंड़
गला—शंख	हाथ पैर-कमल दल या कमल के नवीन पत्ते।
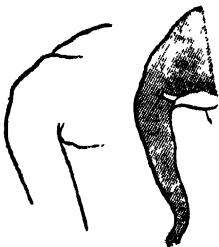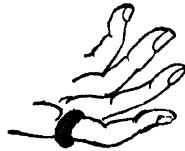
चित्र नं० ४

वर्णिकाभंग तूलिका और रंग आदि के प्रयोग का ढंग समय और उसकी आवश्यकता के साथ-साथ बदलता रहता है। उपनिषदों में एक उल्लेख मिलता है जिसका अर्थ है कि व्यक्ति को अपनी आत्मा से अपने शरीर को उसी प्रकार पृथक रखना चाहिये जिस प्रकार चित्रकार की कूची से घास का तन्तु। इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में बालों के ब्रुशों के स्थान पर घास की तूलिकाओं का ही प्रयोग हुआ। इसके उपरान्त इन घास की तूलिकाओं का स्थान बालों के ब्रुशों ने लिया। मुगल-काल की अत्यन्त बारीक रेखाओं का अंकन गिलहरी आदि के कोमल बालों के ब्रुशों द्वारा किया गया। रंग और उसके व्यवहार की रीति में भी समय के साथ परिवर्तन हुआ। आरंभिक काल में कोयला, गेरू, खरिया आदि का व्यवहार हुआ। बाद के बौद्ध चित्रों के स्थायी रंग पत्थरों को पीस कर बनाये गये तथा चित्रांकन करने के लिये पृष्ठ भूमि खरिया, गोंद, चावल आदि के लेप द्वारा तैयार की गई। आजकल यांत्रिक रंगों का प्रयोग प्रचलित है। आधुनिक काल में प्राचीन पद्धतियों के साथ-साथ वाटर कलर, पैस्टल, आइल आदि कई प्रकार की शैलियां प्रचलित हैं।

५–प्राचीन भारतीय चित्रकला

रतवर्ष में ब्रह्मा अथवा विश्वकर्मा को कला का आदि गुरु माना गया है। चित्रकला की उत्पत्ति और विकास के बारे में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं।

सृष्टि-रचना के उपरान्त ब्रह्मा ने विचार किया कि अब सृष्टि का कार्य-चक्र कौन चलाये और वह कौनसा सुन्दर और शक्तिशाली व्यक्ति होना चाहिये। ध्यान करते ही उसके मस्तिष्क के सामने एक चित्र आ खड़ा हुआ। यह 'चित्रगुप्त' धर्मराज थे। एक दूसरी कथा है कि यमराज ने जब एक मृतक ब्राह्मण-पुत्र में प्राण-संचार करना अस्वीकार किया तो स्वयं ब्रह्मा ने उसका चित्र बना कर एक राजा को उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करने का ढंग बताया। वेदों में वर्णन है कि जीव में आत्मा उसी प्रकार रहती है जिस प्रकार घास के ब्रुश में रंग। इन विवरणों से चित्रकला की प्राचीनता और पवित्रता का बोध होता है। हम लौफर (Laufer) के इस विचार से सहमत नहीं कि भारतीय चित्रकला की उत्पत्ति राजाओं के दर्बारों से हुई। राजा बाणासुर की पुत्री और उसकी सखी चित्रलेखा का वह वृतांत, जिसमें स्वप्न में देखे हुए राजकुमार का विवरण सुनकर सखी चित्र-लेखा के उस राजकुमार का ज्यों का त्यों चित्र खींच देने का वर्णन हुआ है, चित्रकला की उत्पत्ति से सम्बन्ध न रख कर भारतवर्ष की चित्रकला के उच्चकोटि के विकास का ही संकेतक है।

इस युग के जो नष्ट-प्राय चित्र मिलते हैं, उनसे इस युग के कला के विकास की समुचित परख नहीं की जा सकती। संभव है, कि प्राचीन गुफाओं की दीवारों के भित्ति-चित्र भारतवर्ष की जलवायु में दीमकों के कारण नष्ट हो गए हों। लकड़ी के बने हुये भवनों की चित्रकारी की भी यही दशा हुई होगी। देश के प्राचीन साहित्य में प्राप्त चित्रकला-सम्बन्धी जो वर्णन मिलते हैं उनसे प्राचीन काल में चित्रकला के उच्चकोटि के विकास का पता चलता है। चित्रकला पर अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं और कहीं-कहीं इसका शास्त्रीय विवेचन भी मिलता है।

वात्स्यायन के कामसूत्र में चित्रकला के षड्अंगों का वर्णन है जिनका विस्तार-पूर्वक वर्णन पीछे दिया जा चुका है।

चित्रलक्षण चित्रकला के विषय पर दूसरी पुस्तक चित्रलक्षण है। इसमें धार्मिक चित्रों और उनके प्रधान लक्षणों का विस्तार से वर्णन हुआ है। एक अध्याय में आकृतियों के अनुपात के विषय में लिखा हुआ है। देवताओं और राजाओं की आकृतियाँ साधारण मनुष्य से किस प्रकार भिन्न होनी चाहिए, राजाओं और अतिमानवीय आकारों में किस प्रकार भेद किया जाय आदि का बड़ा सैद्धान्तिक वर्णन हुआ है। मुखाकृतियों के विभिन्न प्रकारों पर भी विस्तार-पूर्वक लिखा गया है।

शिल्पशास्त्र शिल्पशास्त्र तीसरी पुस्तक है। यह पुस्तक अपने वास्तविक रूप में अब भी प्राप्त है। चित्रकला के ६ अंगों के आधार पर लिखा गया कला का यह वृहद् शास्त्र कला

के रसात्मक मानों और नियमों की जितनी विशद और वैज्ञानिक व्याख्या करता है वह किसी दूसरे ग्रन्थ में नहीं मिलती।

प्रागैतिहासिक काल के चित्र

भारतवर्ष के प्रागैतिहासिक काल की चित्रकला के नमूने कम हैं। पर जो हैं, वे काफी मनोरंजक हैं। ये नमूने रायगढ़ रियासत के सिंहनपुर ग्राम में, मिर्जापुर में (लिखूरिया, कोहार और भलदरिया), मध्यभारत में होशंगाबाद के निकट, बिहार में चक्रधरपुर के पास तथा विजयगढ़ की गुफाओं में मिलते हैं।

सिंहनपुर के नमूनों में हिरन, छिपकली तथा जंगली भैंसों के चित्र हैं। एक चित्र में सामूहिक नृत्य का सुन्दर चित्रण हुआ है। दूसरे चित्र में एक भैंसे का बड़ा सजीव चित्रण है। भैंसे के सिर के चित्रण में चित्रकार के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय मिलता है। एक अन्य चित्र में कुछ व्यक्ति एक जंगली भैंसे का शिकार कर रहे हैं। शिकारियों में कुछ गिर पड़े हैं और कुछ के घावों से रक्त निकल रहा है। एक स्थान पर बर्छी और भालों से छिदे एक भैंसे का चित्र है। एक ओर वह भैंसा दम तोड़ रहा है दूसरी ओर उसके चारों ओर घिरे हुए मनुष्य प्रसन्न मुद्रा में खड़े हैं। होशंगाबाद के एक चित्र में घोड़े पर सवारी करते हुए मनुष्यों का चित्रण है। दूसरे चित्र में एक बारहसिंगा भागता हुआ दिखाया गया है। बिहार के चक्रधर पुर के समीप एक चित्र में कुछ मनुष्य लेटे हुए दिखलाए गए हैं। उनके समीप में कुछ व्यक्ति भुजाएँ फैला कर अपनी विजय पर गर्व कर रहे हैं।

विषय इन चित्रों का विषय मनुष्यों का वह जीवन है जिसमें वे रहते थे—वह आये दिन के जीवन से सम्बन्ध रखता है। जानवरों का शिकार, परस्पर लड़ते हुए मनुष्य ही इन चित्रों के प्रधान विषय हैं। बारहसिंगा, हाथी, भैंसा, घोड़ा, खरगोश, छिपकली जैसे कुछ पशुओं का सजीव अंकन हुआ है। इसके अतिरिक्त कुछ ज्यामितीय आकारों के डिजाइन भी मिलते हैं। (चित्र नं० ५)

शैली इन चित्रों की रचना के मूल में, जिन भावनाओं ने काम किया है, उनमें प्रकृति पर मानव—विजय के दृश्यों को अंकित करने तथा अपने चारों ओर की घटनाओं की याद बनाए रखने की इच्छा प्रधान है। अतः अविकसित होते हुए भी इन चित्रों की शैली व्यक्ति के आंतरिक उल्लास और आवेश से परिपूर्ण है। शैली यथार्थता पूर्ण है और वही है जो संसार के अन्य देशों स्पेन, मैक्सीको में उस समय के चित्रों की थी। मूल रूप में, इस काल के चित्र आदिम व्यक्ति के अनुभवों और उसकी आनन्द पूर्ण स्थितियों के सांकेतिक और लाक्षणिक नमूने हैं।

चित्रों के अंकन में रामरज, गेरू और हिरौजी का प्रयोग हुआ है। विन्ध्याचल की गुफाओं के निकट लाल रोड़ों के पिसे हुए नमूने और रंगों के पीसने के सिल मिले हैं। जिससे इस काम का एक बड़े पैमाने पर होना सिद्ध होता है।

प्राचीन-काल प्रागैतिहासिक काल के चित्रों के समय और तिथि के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इस युग के पश्चात् हम भारतीय कला के ऐसे युग में प्रवेश करते हैं जो ईसा से ३०० वर्ष पूर्व का है और जिसके सबसे अच्छे उदाहरण रामगढ़ पहाड़ियों के निकट, जो मध्यप्रान्त के पैन्ड्रा
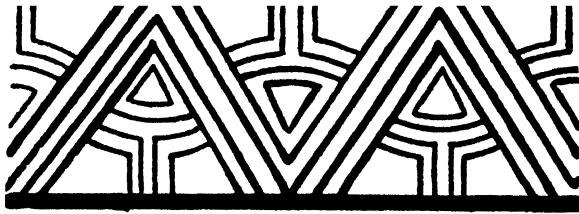
चित्र नं० ५

रोड स्टेशन से लगभग १०० मील के अन्तर पर रामगढ़ पहाड़ियों के बीच जोगीमारा गुफा में पाये जाते हैं।

जोगीमारा गुफाओं के चित्र

यह गुफा १० फीट लम्बी तथा ६ फीट चौड़ी प्राकृतिक गुफा है और ऊँचाई इतनी है कि इसकी छत को खड़े होकर आसानी से छुआ जा सकता है। इसमें सात चित्र हैं। एक चित्र को दूसरे चित्र से पृथक करने के लिये लाल रेखाएँ खींची गई हैं। गुफा की दायीं ओर के पहले चित्र (Panel) में कुछ मनुष्यों, एक हाथी तथा एक विचित्र प्रकार के मगर की आकृतियाँ हैं। मगर के नीचे नदी की लहरों का भाव काले रंग की रेखाओं से दिखाया गया है। दूसरे चित्र में एक वृक्ष के नीचे बैठी हुई अनेक आकृतियाँ बनाई गई हैं। वृक्ष का अंकन एक मोटे तने, उसकी दो चार शाखाओं और उनमें दो एक पत्ती के रूप में हुआ है। पेड़ और पत्तियाँ सभी लाल रंग से खींचे गये हैं। पैनल के तीसरे भाग में सफेद पृष्ठ भूमि पर काली रेखाओं से खींचे गये एक बाग का चित्र है। कुछ पुष्पों को काली रेखाओं से बना कर ही बाग का निर्देश कर दिया गया है। इनमें से एक पुष्प के ऊपर लाल रंग में चित्रित नाचते हुए एक युग्म का चित्र है, जिनके चहरे काफी धुंधले पड़ गये हैं। चौथे पैनल का विषय बड़ा ही विचित्र है। इसमें न तो उचित अनुपात का ही ध्यान

जोगीमारा गुफा की छत के आधे बाहरी ओर का कुछ भाग

चित्र नं० ६

रखा गया है और न अभीष्ट भाव को प्रकट करने की चेष्टा ही हुई है। एक जगह इन मनोरंजक आकृतियों में से एक के ऊपर पक्षी की केवल एक चोंच अंकित है। पाँचवें चित्र में एक पालती मारे बैठी एक स्त्री तथा इधर-उधर नृत्य में मुग्ध कुछ नृत्यकारों के चित्र हैं। छटे और सातवें पैनल के चित्र बिल्कुल अस्पष्ट है।

इन चित्रों की कथा-वस्तु के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। डा० ब्लौच के अनुसार इनका विषय ग्रीक है। रायकृष्ण दास इन चित्रों का विषय जैन मानते हैं तथा हलधर इनका सम्बन्ध रायगढ़ के प्राचीन मंदिरों की देवदासियों से स्थिर करते हैं।

शैली साधारण दृष्टि से देखने पर ये चित्र धुंधले और बेतुके प्रतीत होते हैं। ऐसा ज्ञात होता है, मानों किसी अनाड़ी ने इन्हें गुफा की खुरदुरी सतह पर बना दिया हो। पर ध्यान पूर्वक देखने से अपनी भूल स्पष्ट हो जाती है। वास्तव में इन चित्रों के मूलरूप को उभारने का किसी ने असफल प्रयत्न किया है, जिससे मूल चित्रों की स्पष्ट, सुन्दर और सशक्त रेखाएँ उनके ऊपर खींची गई भद्दी रेखाओं के नीचे दब गई हैं। कुछ चित्रों की शैली अजंता की पतनोन्मुख शैली से मिलती है। यद्यपि रचना में अजंता की सफ़ाई नहीं है, फिर भी डिज़ाइन की दृष्टि से यह अजंता के काफी निकट है। साथ ही साथ इस शैली में तथा तत्कालीन वास्तु और शिल्पकला की शैली में जो समानता है वह भी ध्यान देने योग्य है।

इन चित्रों में लाल, काले और सफेद रंगों का प्रयोग किया गया है। सफेद रंग पहाड़ की चोटी पर पाने वाली सफेद मिट्टी से निर्मित है। काला रंग किसी फल के छिलके से बना हुआ मालूम होता है। कहीं कहीं पीले रंग के स्थान भी हैं, जो लाल रंग के उड़ जाने से रह गये ज्ञात होते हैं।

६--बौद्ध चित्रकला

सवी सन के आरम्भ होते-होते हम भारतीय कला के ऐसे युग में पहुँचते हैं, जो सबसे अधिक महान और गौरवपूर्ण है।

पन्द्रहवीं शताब्दि के इतिहास लेखक तारानाथ ने लिखा है कि जहाँ-जहाँ बौद्धधर्म का प्रचार हुआ वहीं-वहीं प्रतिभा-सम्पन्न धार्मिक कलाकार पाए गए। बौद्ध भिक्षु बुद्ध भगवान के सन्देश को लेकर जहाँ-जहाँ गए, अपने साथ भारत की चित्रकला को भी लेते गए। दूसरे देशों की भाषा से अनभिज्ञ इन भिक्षुओं के पास भगवान बुद्ध की करुणा और विश्व-प्रेम के सन्देश को पहुँचाने का चित्रकला से बढ़ कर सरल और सफल अन्य कोई साधन न था। चित्र द्वारा समझने और समझाने का यह साधन सरल से सरल लिपि की अपेक्षा कहीं आसानी से समझा-समझाया जा सकता था। साथ ही बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएँ जितनी सफलतापूर्वक तूलिका द्वारा व्यक्त की जा सकती थीं और मानव हृदय के कोमल भावों को जिस उत्तेजना के साथ उभार सकती थीं, वह प्रभाव लेखनी द्वारा लेखों में नहीं आ सकता था।

बौद्ध कला का क्षेत्र धीरे-धीरे बौद्ध धर्म का प्रचार तिब्बत, चीन, जापान, लङ्का आदि देशों में हो गया। इन देशों से भारत का घनिष्ठ सम्पर्क रहा और चित्रकला के क्षेत्र में भी यह सम्पर्क बना रहा। यही कारण है कि इन देशों की तत्कालीन चित्र शैली में भारतीय प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। सम्राट मिंगली के बुलाने पर भारत से कश्यपमदण्ड नामक भिक्षु ने अनेक कलाकृतियों के साथ सुदूर पूर्व को प्रस्थान किया था। इस तिथि से लेकर

सातवीं शताब्दि तक कलाकार भिक्षुओं की बड़ी संख्या भारत से चीन जाती रही। इस प्रकार के वर्णन मिलते हैं, कि ये कलाकार भिक्षु उसी देश में बस गए और वहाँ पर उन्होंने भित्तचित्रों का, जो भारतीय बौद्ध शैली का सब से प्रमुख तत्व है, अंकन किया। सुदूर पूर्व जापान में भी कला की इस प्रगति के चिन्ह मिलते हैं नारा काल की चित्रकला में भारतीय बौद्ध शैली की स्पष्ट झलक है।* हारिचुजी नामक मंदिर का प्रसिद्ध भित्तचित्र अजंता कालीन भित्तचित्रों से बिल्कुल मिलता है। विनियन के शब्दों में "इन भित्तचित्रों की शैली—अपनी शानदार बलवती सीमा रेखाओं में बनी हुई आकृतियों और इनके द्वारा प्रदर्शित जीवन और चरित्र की भावना के साथ—अजंता के भित्तचित्रों का स्मरण दिलाती है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि ये चित्र अजंता के आधार पर ही बनाए गये हैं।" पन्द्रहवीं शताब्दि तक में जापान के टौसा स्कूल में भारतीय प्रभाव देखा जा सकता है। यह भारत से आई हुई पुस्तक – चित्रों की कला की एक शाख है जो चीन के माध्यम से बौद्ध धर्म के साथ-साथ यहाँ आई। यह ठीक है, बौद्ध शैली के कतिपय निमयों में परिवर्तन दीख पड़ता है; परन्तु यह भी मानना पड़ेगा, यह टौसा स्कूल की कला चीनी आलेखन प्रणाली से बिल्कुल भिन्न है। प्रसिद्ध कला समीक्षक रिकैट ने इस विषय में इसी मत का समर्थन किया है। भारतीय धार्मिक और कलामय वातावरण ने बाहर के विद्यार्थियों को आकर्षित किया था

---

* बौद्ध काल की इन आरंभिक कृतियों में त्रुटि रहित वैभव और धार्मिकता का पुट है। पर बहुत कम दशाओं में यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वे वहीं के आदिम निवासियों की रचना है। यह नहीं कि वे ढंग में किसी प्रकार चीनी है, वरन यह कि इन स्मारकों से तत्कालीन भारतीय कला का, जैसा कि अजंता की गुफाओं से ज्ञात होता है, स्मरण हो आता है।

डीलन

और भारत में उस समय इन विषयों में शिक्षा देने के लिए बड़े-बड़े विश्वविद्यालय थे। इन प्रमाणों के साथ यह सुविधापूर्वक कहा जा सकता है कि एशिया की कलाओं पर उस समय भारतीय कला का निश्चित प्रभाव पड़ा और उस काल की समस्त देशी और विदेशी शैलियाँ बौद्ध शैली से प्रेरणा ग्रहण करती रही।

भारतवर्ष बौद्ध धर्म की जन्मभूमि है, अतः उसको बौद्ध-शैली की जन्मभूमि मानना भी उचित होगा। अजंता की गुफाओं के पूर्व तथा उत्तर कालीन चित्रों से बौद्ध शैली का विकास अच्छी तरह समझा जा सकता है। लंका की सिगारिया गुफाओं में भी बौद्ध शैली का विकसित रूप मिलता है।

७-अजंता के भित्तचित्र

जाम राज्य में स्थित फरदापुर नामक एक गाँव है। इसी गाँव के निकट लगभग ४ मील की दूरी पर अजंता के कलामण्डप स्थित हैं। अजंता तक पहुँचने के लिए कोई रेल-मार्ग नहीं है। अजंता के निकट तीन स्टेशन जलगाँव, औरंगाबाद और पहूर हैं, जो क्रमशः ताप्ती वैली, जी० आई० पी० और निजाम जी० एस० रेलवे तथा जैमर रेलवे पर है। शेष भाग को पैदल या बस-टैक्सी करके पार करना पड़ता है। फरदापुर से चार मील की दूरी पर वाघोर नदी बहती है। अजंता पहुँचने के लिए इस नदी को पार करना पड़ता है। इस नदी में सर्पाकार अनेक घुमाव हैं। अंतिम घुमाव को पार करते ही लगभग तीन सौ फीट टीले के बीचोबीच गुफाओं की एक लम्बी कतार दिखाई देती है। ये गुफाएँ संख्या में उन्तीस हैं। यही अजंता के प्रसिद्ध कलामण्डप हैं, जिनमें भारत की अतीत गौरव-स्मृतियाँ आज भी सुरक्षित हैं। अजंता की गुफाओं के आसपास का दृश्य भी बड़ा रमणीक है। एक ओर सूखी पहाड़ियाँ खड़ी हैं। पास में वाघोर नदी बहती है। सारा दृश्य मनोहर और स्वाभाविक है। अजंता की गुफाओं के दो प्रकार हैं—एक चैत्य दूसरा विहार। विहार भिक्षुओं के निवास और अध्ययन के स्थान थे। चैत्यों में उपासना की जाती थी। चैत्य विहारों से कहीं अधिक लम्बे हैं और उनके सिरों पर स्तूप बने हुए हैं।

वर्तमान खोज यद्यपि अजंता के कलामण्डप बहुत प्राचीन काल के हैं परन्तु इनकी कला अभी सवासौ वर्ष पूर्व ही प्रकाश में आई है। इसका पता सन १८१९ में मद्रास सेना के

कुछ योरपीय अधिकारियों ने लगाया था। सन् १८१६ ई० में रायल एसियाटिक सोसाइटी ने सर्वप्रथम इसका विवरण प्रकाशित किया। इसी प्रकार का परिचयात्मक विवरण सन १८३९ में बाम्बे कोरिअर में छपा। तदन्तर गुफाओं के विषय में अनेक विवरण प्रकाशित होते रहे। मैजर रावर्ट गिल द्वारा भित्तिचित्रों की प्रतियाँ तैयार की गईं और उनको क्रिस्टल पैलेस की प्रदर्शिनी में रखा गया परन्तु क्रिस्टल पैलेस-प्रदर्शिनी की भयानक अग्नि में सब स्वाहा होगया— केवल पाँच प्रतियाँ बचीं। ग्रिफ्थ्स महोदय ने १८७५ ई० में इन चित्रों की प्रतियाँ तैयार करने का भार अपने ऊपर लिया और दस वर्ष के परिश्रम के १८८५ ई० में साउथ कैनिंगटन की नमाइश में रखा। १८९६ ई० में आपका अजंता के भित्तचित्रों के विषय में एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। श्री ग्रिफ्थ्य महोदय प्रथम विद्वान थे जिन्होंने कला-समीक्षक के रूप में अजंता के महत्व को देशी और विदेशी जनता के सामने रखा। सन १९११ में लेडी हेरिंगम और उनके साथियों ने इन चित्रों की प्रतियाँ तैयार कीं और एक 'अजंता फ्रैस्कोज़' नाम की पुस्तक प्रकाशित की।

चित्रों का काल-निर्णय

अजंता के चित्रों का काल-निर्णय करना कठिन है क्योंकि इसका पूर्व इतिहास अज्ञात है और चित्रों के विषय से भी कुछ सहायता नहीं मिलती। केवल एक दो घटनाओं को छोड़ कर, जिनके ऐतिहासिक होने का संदेह किया जाता है, शेष सभी चित्रों का विषय बुद्धजी की जन्म जन्मान्तर की कथाएँ हैं। इन चित्रों का रचना-क्षेत्र काफी विस्तृत है परन्तु यह किसी एक कलाकार के हाथ की रचना नहीं। समय और शैली की अनेकरूपता इनमें निश्चित रूप से विद्यमान है और सम्पूर्ण चित्र एक ही शैली का निरन्तर शीघ्रता से बदलता हुआ रूप नहीं कहे जा सकते।

विभिन्न गुफाओं के चित्रों के रचना-काल के सम्बन्ध में विद्वान एक मत नहीं हैं। इस विषय में ब्राउन महोदय का विभाजन अधिक समीचीन प्रतीत होता है, जो इस प्रकार है :—

१—९ और १० नम्बर की गुफाएँ—१०० ई०

२—१० नम्बर की गुफाओं के खम्बे—३५० ई०

३—१६ और १७ नम्बर की गुफाएँ—५०० ई०

४—१ और २ नम्बर की गुफाएँ—६२६-६२८ ई०

इस बात से तो प्रायः सभी विद्वान सहमत हैं, कि ९ और १० नम्बर की गुफाएँ सबसे प्राचीन हैं। क्योंकि उनकी चित्र-शैली में तत्कालीन अमरावती और भरहुत की कला की स्पष्टतः छाप है। इस आधार पर इनका समय भी १०० ईसवी ठहरता है। नम्बर १० की गुफाओं के खम्भों पर अकेली आकृतियों के विषय चित्रित किए गए हैं। इनमें शैली का भेद स्पष्टतः दिखाई देता है। आकृतियों का तेजमण्डल इन चित्रों की विशेषता है साथ ही साथ सजावटी डिजाइनों में गान्धार शिल्प का प्रभाव है। चित्रों में प्राचीन चित्रों से अधिक विकास भी है। दक्षिण की राजनैतिक परिस्थिति के विषय में तो निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता परंतु यह समय गुप्त काल का है, जिसे हम समुद्रगुप्त के समय या उसके बाद का मान सकते हैं। १६ व १७ नम्बर की गुफाएँ ५०० ई० की हैं। १६ वीं गुफा के बाहर एक लेख है, जिससे पता चलता है कि वाकतक वंश के एक मंत्री के पुत्र की आज्ञा से यह बिहार खोदा गया था। इस वंश का समय ५०० ई० लगभग है। १६ वीं गुफा का विषय भी १७ वीं गुफा से पहले का है। १७ वीं गुफा के चित्र उच्चकोटि के हैं और वर्णनात्मक शैली में बनाए गए हैं। गुफा १ और २ के 'काल' का आधार गुफा नं० १ का एक चित्र है, जिसमें पुलिकेशिन द्वितीय ईरान के सम्राट खुसरो परवेज के राजदूत

का स्वागत करता हुआ दिखाया गया है। इस घटना का समय ६२६ ई० से ६२८ ई० तक का है।

चित्रों का विषय चित्रों का मुख्य विषय गौतम बुद्ध की जन्म-जन्मान्तर की वे कथाएँ हैं, जो जातक के नाम से विख्यात हैं। कथाओं का चित्रण होने के कारण मानव, पशु, चर, अचर सभी कला का विषय बन गए हैं। राज-दरबारों का भी चित्रण हुआ है। चित्रों का विषय धार्मिक होते हुए भी सांसारिक है। परन्तु कलाकारों ने उसी सांसारिक विषय को अपनी प्रतिभा से स्वर्गिक बना दिया है। चित्रों का यह स्वर्गिक संसार पवित्र आत्माओं सुन्दर आकृतियों से जगमगा रहा है

पहली गुफा के चित्र पहली गुफा में कुछ चित्र ऐसे हैं जो विश्व प्रसिद्ध हैं। सामने बायीं ओर 'शिवि जातक' को चित्रित किया गया है। इसमें बोधिसत्व के अवतार राजा शिवि की कथा वर्णित है, जो अपने शरीर से मांस का एक भाग काट कर कबूतर की रक्षा के लिये बाज को देता है। सारा दृश्य करुणा से ओत-प्रोत है। इसी गुफा में मण्डल की दीवार पर बोधिसत्व का सब से बडा चित्र अंकित है। (चित्र नं० ७) यह उस समय का चित्रण है जिस समय कुमार सिद्धार्थ गृह-त्याग की सोच रहे हैं। चित्र मनुष्य के आकार से कुछ बड़ा है। आकृति में किंचित भंग है। मांसल और सुन्दर मुखमण्डल पर चिन्ता, करुणा के भाव सफलता पूर्वक अंकित किए गए हैं। चित्र के आस-पास की समस्त देव-सृष्टि, मानव-सृष्टि तथा और विचारमग्न यशोधरा पर इनके इन भावों का प्रभाव पड़ रहा है। कुछ ही रेखाओं में कुमार के कन्धों तथा बाहुओं का बड़ा मनोरम चित्रण हुआ है। कन्धों और बाहुओं के बीच तनिक छाया दिखाकर कोमलता और सुन्दरता का

संसार प्रसिद्ध बोधिसत्व के चित्र

(अजंता गुफा—१) (चित्र नं० ७)

बड़ी ही कुशलतापूर्वक आभास दे दिया गया है। अजंता-शैली के प्रसिद्ध आलोचक श्री कैकोनी का कथन है कि "यह चित्र अपनी

भव्य सीमान्त-रेखाओं में, 'सिस्टिनचैपल' में माइकेलएञ्जिलो की आकृतियों का स्मरण दिलाता है, जब कि माँस के रंग की प्रकृति के अत्यधिक अनुरूप निर्मलता और छायाओं की पारदर्शिता 'कौरिजओ' के अत्यधिक समान है। मुखमण्डल की रचना और भाव में वह असाधारणतः आश्चर्यपूर्ण है। टेकनिक की महानता और पूर्ण यथार्थता को प्रकट करती हुई हाथ की रचना की व्याख्या इटली के पुनर्जागरण काल के दो महान् कलाकारों से समानता करने की अनुमति प्रदान करती है। ....वास्तव में, लाल और नीले रङ्ग इसकी मुख्य विशेषता हैं जो सुन्दरता और संगति के साथ एक दूसरे को सङ्गतिपूर्ण बनाए हुए है।"

इसी गुफा में चित्र नं० ८ गौतम बुद्ध तथा उनकी पत्नी के विवाह के समय का एक दृश्य कहा जाता है और उपरोक्त बातों का अच्छा उदाहरण है।

'बुद्ध का प्रलोभन' नामक एक और चित्र है। यह बुद्धि की जीवन-गाथाओं में अत्यधिक पूर्ण है। यह चित्र भी बोधिसत्व की भाँति ही भावपूर्ण और कला की दृष्टि से वैसा ही महत्वपूर्ण है। पूरी दीवार पर सिद्धार्थ की तपस्या और कामदेव के आक्रमण का चित्र अङ्कित है। अपने दल-बल के साथ काम-देव भगवान को घेरे हुए है और उनकी तपस्या भङ्ग करने की चेष्टा कर रहा है। बुद्ध के चारों ओर विकट मुख वाली डरावनी मूर्तियाँ तथा दूसरी ओर उनकी वासनाओं को उभारने वाली सुन्दरियाँ खड़ी हैं; परन्तु कुमार सिद्धार्थ इन सब के बीच शान्त मुद्रा में स्थित हैं। तथागत की मुद्रा में अलौकिक शान्त है मानो,

(अजंता गुफा—१) (चित्र नं० ८)

उनके चारों ओर कुछ हो ही नहीं रहा है। चित्रकला में शान्त रस का इतना पूर्ण और सफल परिपाक संसार में अन्यत्र नहीं हुआ है।

दूसरी गुफा के चित्र दूसरी गुफा के कुछ चित्रों में भगवान् बुद्ध के जीवन की कुछ घटनाओं का चित्रण हुआ है। इनमें 'लुम्बिनी की यात्रा,' 'माया का स्वप्न', 'श्रावस्ती का रहस्य' मुख्य हैं। "हंस-जातक" की एक कथा का भी चित्रण है। परन्तु इन गुफाओं के चित्रों की सबसे बड़ी विशेषता इनके मानव आकार हैं, जिनमें कुछ बहुत प्रसिद्ध हैं। चित्र नं० ६, इस चित्र का एक भाग है जिसमें एक राजा एक बालिका को दण्ड देने के लिए तलवार उठा रहा है। क्षमा-याचना के भंग में बालिका के

हाथों की उँगलिओं का शिथिल कम्पन, उसकी असहायता की तीव्र अनुभूति तथा नीचे की ओर जाने वाली रेखाओं के साथ झुके हुए अङ्ग-प्रत्यङ्ग को देखकर ऐसा ज्ञात होता है मानो, उसका सारा शरीर और हृदय नीचे बैठा जा रहा है और सम्पूर्ण व्यक्तित्व धूल में मिलने के निकट पहुँच गया है। इस गुफा में खम्भ के सहारे खड़ी हुई बालिका का चित्र भी उल्लेखनीय है।

नवीं गुफा के चित्र इस गुफा में अधिक महत्वपूर्ण चित्र नहीं। इनमें से अधिकांश बहुत धुँधले हैं। अधिकांश चित्रों में दीवारों, खम्भों तथा जङ्गलों में भगवान् बुद्ध की आकृतियों तथा उनसे सम्बन्धित कथाएँ चित्रित हैं।

दसवीं गुफा के चित्र इस गुफा के चित्र, कला और इतिहास की दृष्टि से, बड़े महत्व के हैं, जिनमें भील आदि जंगली जातियों के सामाजिक जीवन का सुन्दर चित्रण हुआ है चित्र नं० १०।

इन चित्रों में, एक राजा और रानी के पुत्र तथा उनके आस-पास में खड़े हुए व्यक्तियों का संयोजन मुख्य है। अजंता में यही गुफा ऐसी है जिसके चित्र तत्कालीन आचार विचारों की सही व्याख्या करते हैं।

१६ नम्बर की गुफा के चित्र १६ वीं गुफा के कई चित्र उल्लेखनीय हैं। 'मरणोन्मुख राजकुमारी' कलाकार की प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण है। राजकुमारी के जीवन की समस्त आशाएँ समाप्त हो गई हैं। नेत्रों के नीचे के पलकों में तीव्र
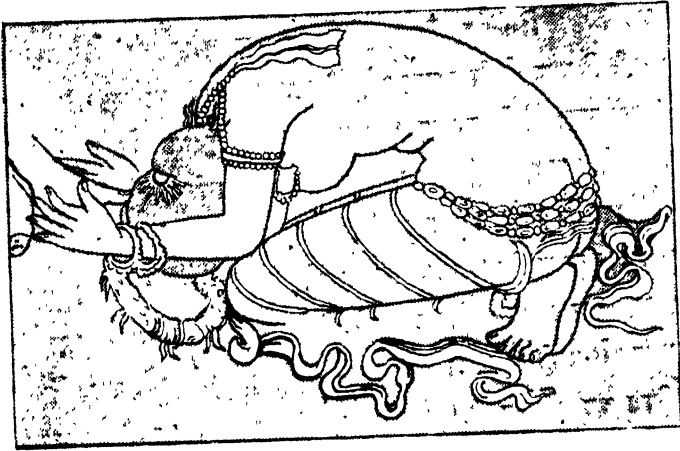
(अजंता गुफा—२) (चित्र नं० ९)

(अजंता गुफा—१०) (चित्र नं० १०)

वेदना और निराशा है। समीप में स्थित बालिका को बाँह पर पड़ी हुई रानी की शिथिल उँगलियाँ तथा एक बाँह की ओर झुके होंठ मृत्यु की विजय घोषित कर रहे हैं। राजकुमारी की मुद्रा तथा आस-पास की मुद्राओं के व्याकुल भाव बरबस दर्शक को रुला देते हैं। गिफथ्स के शब्दों में 'करुणा, भाव तथा कहानी कहने के त्रुटिरहित ढंग में इस चित्र से बढ़ कर कोई चित्र कला के इतिहास में नहीं हो सकता।' दूसरा चित्र, भगवान् बुद्ध के गृह-त्याग का है। भगवान बुद्ध गृह-त्याग कर के जा रहे हैं। यशोधरा अपने पुत्र राहुल के साथ सो रही है। आसपास की दासियाँ भी सो रही हैं—यही इस चित्र का विषय है। भगवान की मुद्रा में वही असाधारण शांति विराजमान है। इस गुफा में अधिकांश चित्र ऐसे हैं, जिनकी कथावस्तु के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट नहीं होता। कुछ चित्रों में 'सूतसोम' जातक का चित्रण है। एक चित्र में 'नन्द का धर्म परिवर्तन' चित्रित है। कुछ चित्र भगवान बुद्ध के जन्म, विद्याध्ययन तथा उनके बाल्यजीवन की चार प्रसिद्ध घटनाओं के आधार पर बनाए गए हैं।

१७ नम्बर की गुफा के चित्र

अजंता की १७ वीं गुफा के सभी चित्र एक से एक बढ़कर हैं। इस गुफा में 'माता और पुत्र' का एक प्रसिद्ध चित्र है। (चित्र नं० ११) माता और पुत्र यशोधरा और राहुल हैं। आकृतियाँ पूरे मनुष्य के आकार की हैं और इनके सामने अपने दाहिने पात्र में भिक्षापात्र लिए हुए भगवान बुद्ध का मानव आकार से कहीं अधिक विशाल चित्र अंकित है। बुद्धत्व प्राप्त करने के पश्चात् तथागत भिक्षुक के

रूप में अपनी जन्मभूमि में उपस्थित हुए हैं। यशोधरा उन्हें राहुल से बढ़ कर और कौन सी भिक्षा दे सकती थी। यही इस चित्र का विषय है। चित्र में दोनों, आकृतियों के सिर, उनकी बुद्ध की ओर दिशा तथा उनके मुख पर झलकते हुए भाव विशेष दर्शनीय हैं। कलाकार ध्वनिकला के नियमों में पूर्ण पारंगत जान पड़ता है। होठों, नेत्रों तथा हाथों के भाव अपूर्व आकर्षण उत्पन्न करते हैं। यशोधरा के नेत्रों से श्रद्धायुक्त आत्म-त्याग का भाव बच्चे में अबोधता, औत्सुक्य तथा श्रद्धा का भाव और भगवान बुद्ध के नेत्रों से विश्व-कल्याण के निमित्त सात्विक ग्रहण का भाव टपक रहा है। सुकुमारता और भव्यता का ऐसा संयोजन अन्यत्र दुर्लभ है।

माता और पुत्र

(अजंता गुफा—१७) (चित्र नं० ११)

'सर्वनाश' चित्र में एक राजदूत डंडे के सहारे खड़ा है। (चित्र नं० १२) उस के दुखित नेत्र, होठों की रचना और सम्पूर्ण उतरा हुआ चहरा 'सर्वनाश' की सूचना दे रहे हैं। नेत्र और मुख के भावों में अपूर्व सामञ्जस्य है तथा दाहिने हाथ की निराश मुद्रा मानों कह रही है कि 'सब समाप्त हो गया'। चित्र मूक होने पर भी सब कुछ कह रहा है।

(अजंता गुफा—१७) सर्वनाश (चित्र नं० १२)

एक अन्य चित्र में 'गज जातक' की कथा का चित्रण है। इसमें हाथियों का चित्रण बड़ा स्वाभाविक है और भावपूर्ण है। इस चित्र में 'गजराज के मिलन' का बड़ा हृदयस्पर्शी दृश्य है। बनारस की रानी गजराज द्वारा पूर्व जन्म में अपने के प्रति किए गए अपमान का बदला लेना चाहती है; परन्तु उसके द्वारा प्रेषित दूत उसके दांत काटने में असमर्थ होते हैं। गजराज जो पूर्व जन्म का बोधिसत्व था, उनको स्वयं निकाल कर देता है परन्तु जैसे ही रानी उन दाँतों को देखती है उसे आत्म-ग्लानि होती है। वह अपने क्रूर कार्य के लिए पश्चाताप करती है और असह्य वेदना में उसका प्राणान्त हो जाता है—यही इस चित्र का विषय है। पूरे दृश्य से करुणा और सहानुभूति टपकी पड़ती है। दाँतों को लिए हुए दूत तथा रानी के आस-पास घिरी हुई स्त्रियों की सहानुभूतिपूर्ण आकृतियाँ और रानी की आत्म-ग्लानि—ये सब चित्रकार ने बड़ी सहृदयता से व्यक्त किए हैं। मूक हाथियों के भावों का बड़ी कुशलता के साथ चित्रण हुआ है। विश्व-प्रेम और विश्व-मैत्री के भारतीय आदर्श का यह चित्र बड़ा सफल और पूर्ण है।

'महाकपि जातक' के एक चित्र में 'कपिराज', पूर्व जन्म के बोधिसत्व, अपने साथियों की रानी के आक्रमण से रक्षा करते हुए दिखाए गए हैं।

एक अन्य चित्र में युद्ध का दृश्य दिखाया गया है। इस चित्र में लगभग ३०० मुखाकृतियाँ अब भी शेष हैं। प्रत्येक आकृति के रंग में भिन्नता है तथा मुखों पर युद्ध के भिन्न-भिन्न भाव स्पष्टतः अंकित हैं।

इसी गुफा के एक चित्र में गन्धर्वों, अप्सराओं तथा किन्नर-गायकों का एक मनोरम संयोजन है। (चित्र नं० १३) मुखों पर अंकित दिव्य-सौन्दर्य के भाव तथा उनकी सरल ऊर्ध्वगति चित्र की विशेषता है। मुखों पर अंकित भावों को देखने से यही अनुमान होता है कि वे कोई दिव्य अलौकिक मूर्तियाँ हैं तथा उनकी मंद गति ठीक वैसी ही है जैसी कि सुविधापूर्वक उठते हुए व्यक्तियों की होनी चाहिए।

कुछ दूसरे चित्रों में "सिंहलअवदान" "मत्स्यजातक" तथा "मातृपोषक" की कथाओं का चित्रण हुआ है। रंग-योजना की दृष्टि से 'महाहंसजातक' कथा का चित्र उल्लेखनीय है। इस चित्र की रंग-योजना अजंता की रंग-योजना का पूर्णतः प्रतिनिधित्व करती है।

गन्धर्व और अप्सराएँ

(अजंता गुफा—१७) (चित्र नं० ११)

८—अजन्ता शैली की विशेताएँ

संयोजन अजन्ता के दर्शक को जो वस्तु सबसे अधिक अपनी ओर आकर्षित करती है, वह है वहाँ के चित्रों की महान योजना और उसका वैभव। संयोजन में यह चित्र अनुपम हैं। दृश्य-संयोजन में केंद्रत्व का बहुत अधिक ध्यान रखा गया है। हमारी दृष्टि संयोजन की मुख्य-मुख्य रेखाओं द्वारा प्रधान वस्तु पर तुरन्त पहुँच जाती है। चित्र में अंकित प्रधान वस्तु का अंकन अत्यन्त सम्यक और पूर्ण होता है। वह अन्य वस्तुओं की अपेक्षा बड़ी होती है और उसका स्थान मध्य में बड़ी सावधानी से निश्चित किया जाता है। प्रायः सभी उप-आकृतियाँ बुद्ध की विशाल, शांत और गंभीर प्रतिमा के इधर-उधर बनी हुई हैं—ऐसा करने से चित्र के यथार्थ को कोई हानि नहीं पहुँची ; वरन् चित्र के 'रस' की मात्रा में वृद्धि होगई है।

काल्पनिक दृश्या (पर्सपैक्टिव) अजंता की दृश्या विशेष प्रकार की है। अनेक कालों और स्थानों को एक ही दृश्य में अंकित किया गया है। चित्र में भिन्न-भिन्न 'तलों' की आकृतियाँ एक के ऊपर एक सजी हुई हैं। चित्रों में खम्भ और बरामदे तो हैं पर दीवारों और छतों को हटा कर दृश्य को पूर्ण पारदर्शक बना दिया गया है। बहुत से चित्र ऐसे हैं जिनमें एक ही दृश्य में बुद्ध की जन्म-जन्मान्तर की कथाएँ अंकित की गई हैं।

परन्तु प्रत्येक व्यक्तिगत आकृति अपने-अपने स्थान पर बिल्कुल ठीक है। देवता, मानव, पशु पक्षी, पेड़, पौदे सभी अपने-अपने स्थान पर बनाए गए हैं और अपनी-अपनी जगह ठीक दृश्या में हैं। (चित्र नं० १४ और १५) को अजंता की स्थिति-जन्यलघुता (Foreshorten-

चित्र नं० १४

ing) के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। चित्र नं० १४ में दायें हाथ के अग्रभाग की इतनी यथार्थ स्थिति दिखाई गई है कि वह अजंता की स्थिति-जन्यलघुता के विषय में किसी भी भ्रांत दृष्टिकोण को मिथ्या सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। यही बात चित्र नं० १५ में घुटनों की स्थिति के विषय में कही जा सकती है।

चित्र नं० १५

रेखाएँ

रेखाओं का सफल अंकन अजंता की चित्रकला का तात्विक और महत्वपूर्ण लक्षण है। पूर्वी चित्रकला का आधार रेखाएँ रहीं हैं, जब कि पाश्चात्य चित्रकला की अभिव्यक्ति मूल रूप में मांसल है। भारतीय चित्रकार को सभी कुछ रेखाओं में व्यक्त करना होता है। अजंता की सजीव रेखाओं द्वारा आकृति के अनुरूप गोलाई, उभार, घनत्व, छाया-प्रकाश, स्थितिजन्यलघुता—सभी कुछ दिखा दिए गए हैं।

अजंता की रेखाएँ अटूट, प्रवाहमय और सशक्त हैं। संदेह और हिचक का कहीं नाम भी नहीं है। उदाहरण के लिए भौं को तूलिका के एक ही प्रवाह में अंकित किया गया है; पर इस एक ही रेखा में

कुछ ऐसी सजीवता आगई है, जो किसी कला पारंगत आचार्यों के हाथों से ही सम्भव हो सकती हैं। सर्वत्र ही एक प्रवाह, गति और सजीवता है। अजंता की रेखाएँ शक्ति और सौन्दर्यपूर्ण हैं। उनमें लचक, कोमलता और अद्भुत भावगम्यता रहती है। जापानी रेखा की भाँति यद्यपि इसमें एक विशेष प्रकार का क्रम नहीं होता और न चीनी रेखाओं की तरह वह संश्लिष्ट और रूढ़िबद्ध होती हैं, पर प्रवाह, उन्मुक्त गति और अटूटता में वह इन दोनों से आगे है।

अजंता के चित्र रेखाओं के गुण और उनके प्रकार की भिन्नताओं का सफल आदर्श उपस्थिति करते हैं। दुःख, सहानुभूति, करुणा आदि भावों को व्यक्त करने के लिए रेखाओं को अधिकाधिक शिथिल बना दिया गया है। झुकी हुई कमर तथा ढीली-ढाली रेखाओं और दण्डवत मुद्रा में बनी हुई कितनी ही आकृतियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। परिष्कृता का आभास देने के लिए सीमा-रेखाओं को अत्यन्त सशक्ति अंकित किया गया है तथा भावानुकूल स्थितियों में रेखाएँ कोमल से कठोर होती गई हैं।

रस-चित्र अजंता के चित्र रस-चित्र हैं। चित्रकार का प्रधान लक्ष्य भाव-अनुभावों का चित्रण और तदनुकूल रसों का सृजन ही है। रस और इन चेष्टाओं का परस्पर बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। आँखों की चितवनों में, हाथों की मुद्राओं में, शरीर की भंगिमाओं में और छोटी से छोटी वस्तु के अंकन में यही रहस्य छिपा है। याचना, विनय, आशा, निराशा, दान, ग्रहण, भय, शांति, सेवा

समर्थन आदि विभिन्न भावों में विविध प्रकार की अंग-भंगिमाओं, हस्त-मुद्राओं और चितवनों का प्रयोग हुआ है जो सम्मिलित रूप में किसी रस विशेष की सृष्टि करती हैं।

मुद्राएँ अजंता के भित्तचित्रों की मुद्राएँ संसार की चित्रकला के लिए महान आदर्श हैं। सुन्दर तथा सुकुमार भावों से स्पन्दित चंपक की कलियों सी उँगलियाँ जिह्वा से भी अधिक वाचाल हो उठी हैं। अजंता की प्रत्येक मुद्रा का अपना विशेष अर्थ है। चमर डुलाती हुई, फूल लिए हुए, पात्र पकड़े हुए, प्रणाम करते हुए तथा विभिन्न भावों शांति, करुणा, दुःख आदि को व्यक्त करती हुई हस्त-मुद्राएँ भरी पड़ी हैं। बाजा बजाती हुई उँगलियों के गति और ध्वनि-चित्र सारे दृश्य को मुखरित करते प्रतीत होते हैं। मुद्राओं द्वारा अभीष्ट भाव व्यक्त करने के लिए कहीं तो हथेलियों को मोड़ दिया गया है और कहीं खोल दिया गया है। कहीं इनसे एक असाधारण उल्लास टपकता है और कहीं सात्विक शांति। (चित्र नं० १६, १७, १८ और १६) अजंता की पाद-मुद्राओं के विषय में भी यही सत्य है। चांचल्य, वेग, स्थिरता आदि विभिन्न क्रियाओं में पैरों की रचना की इतनी असंख्य अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं कि आश्चर्य होता है। चित्र नं० २०, २१, २२ और २३)
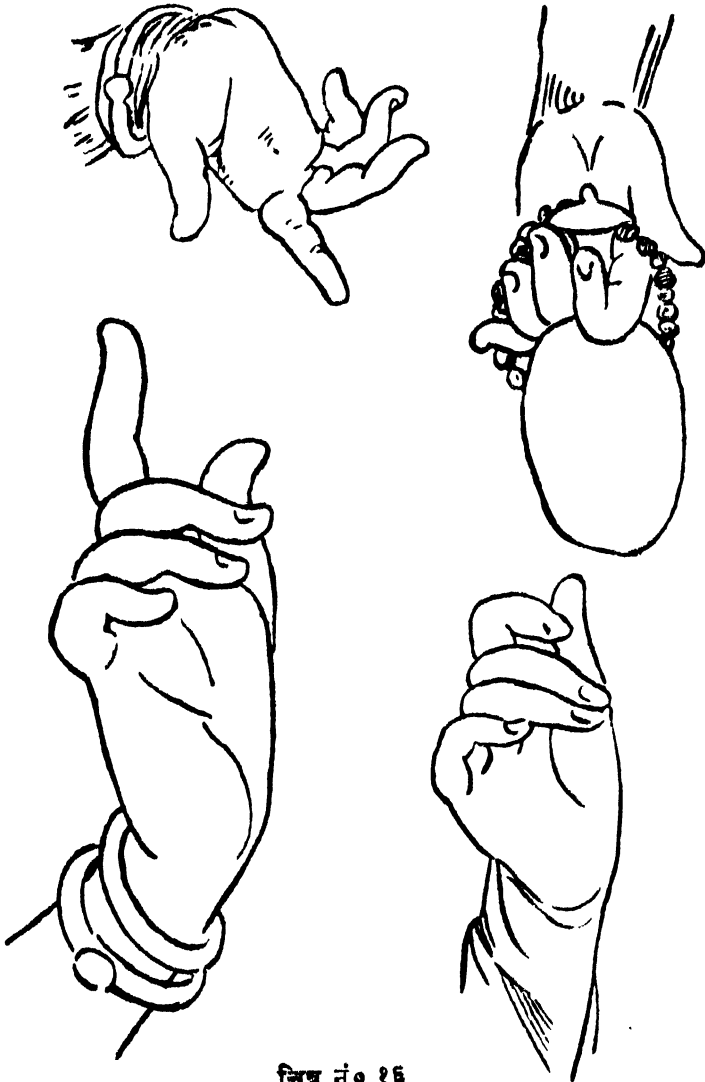
चित्र नं० १६
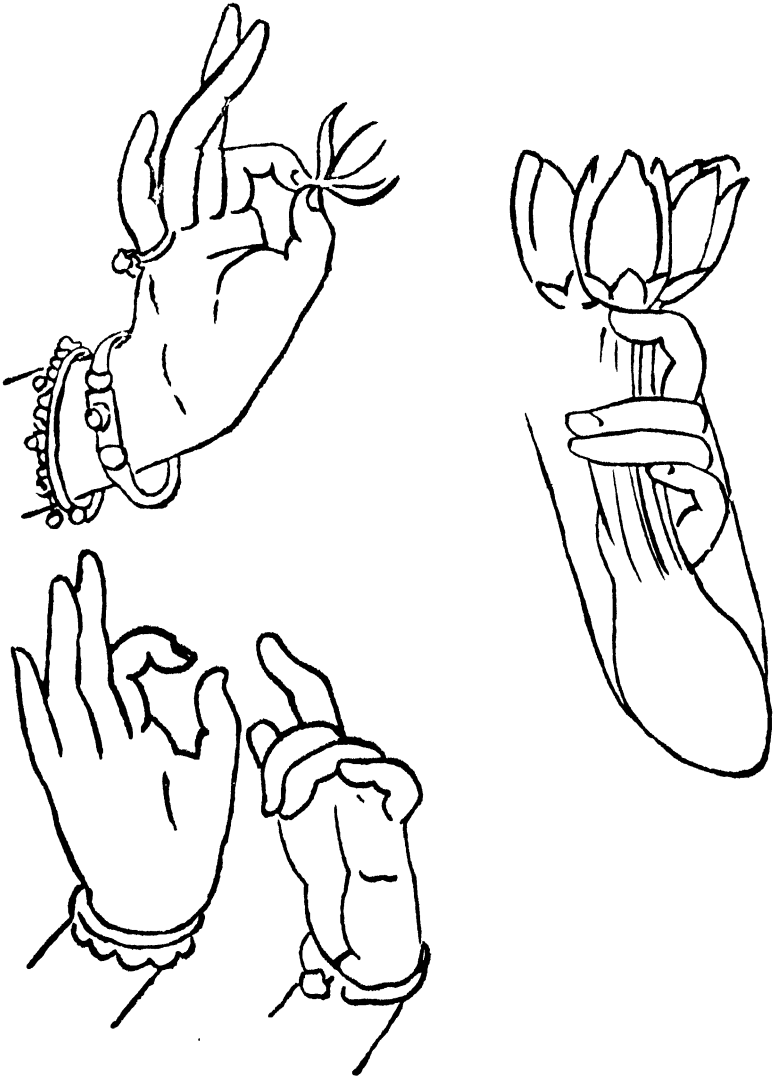
चित्र नं० १७
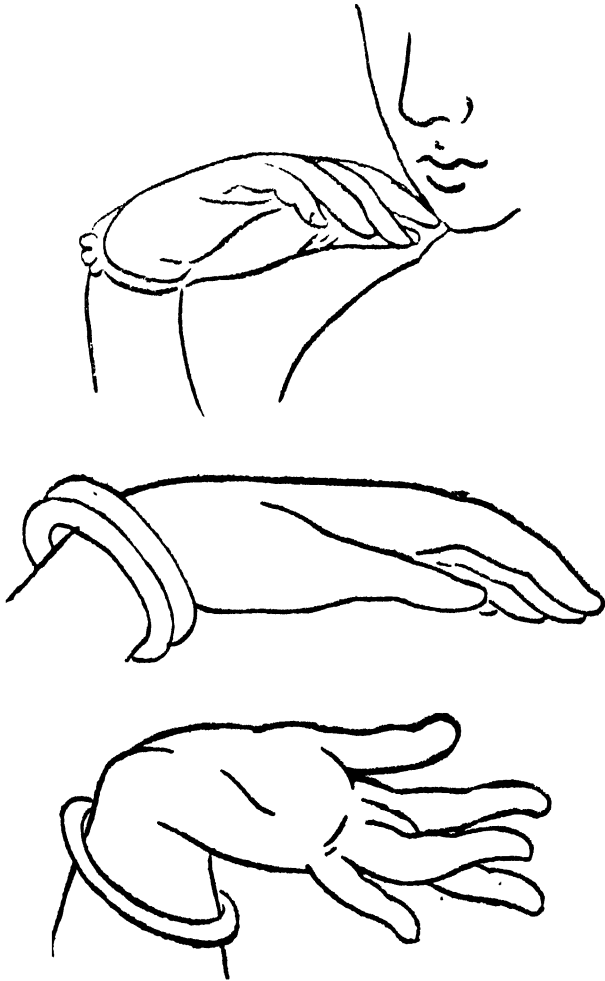
चित्र नं० १८
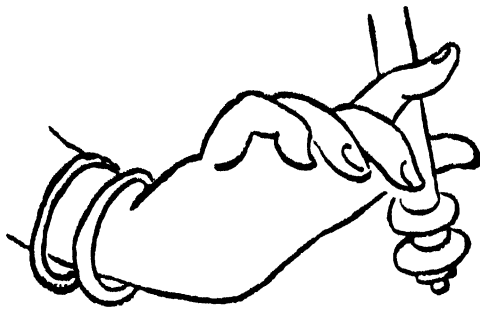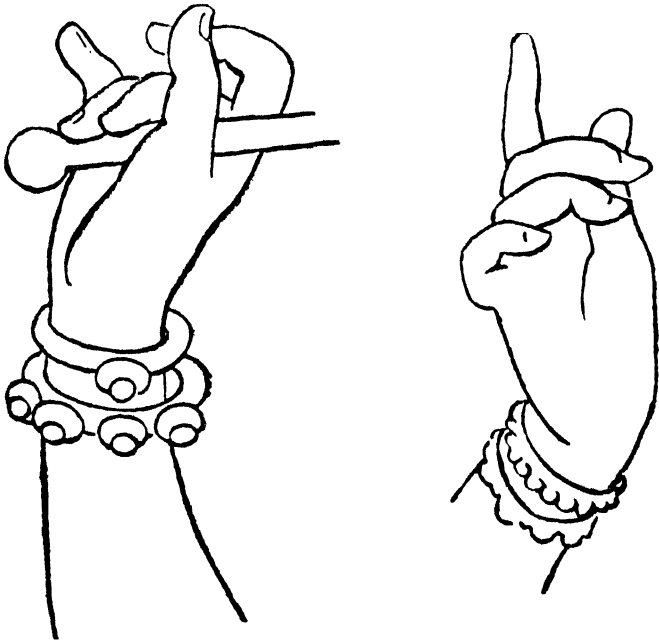
चित्र नं० १६
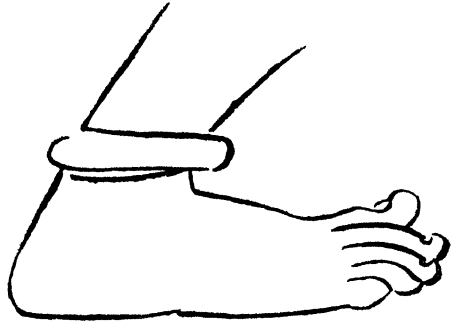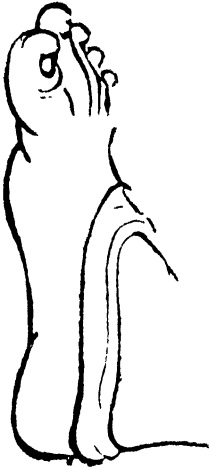
चित्र नं० २०
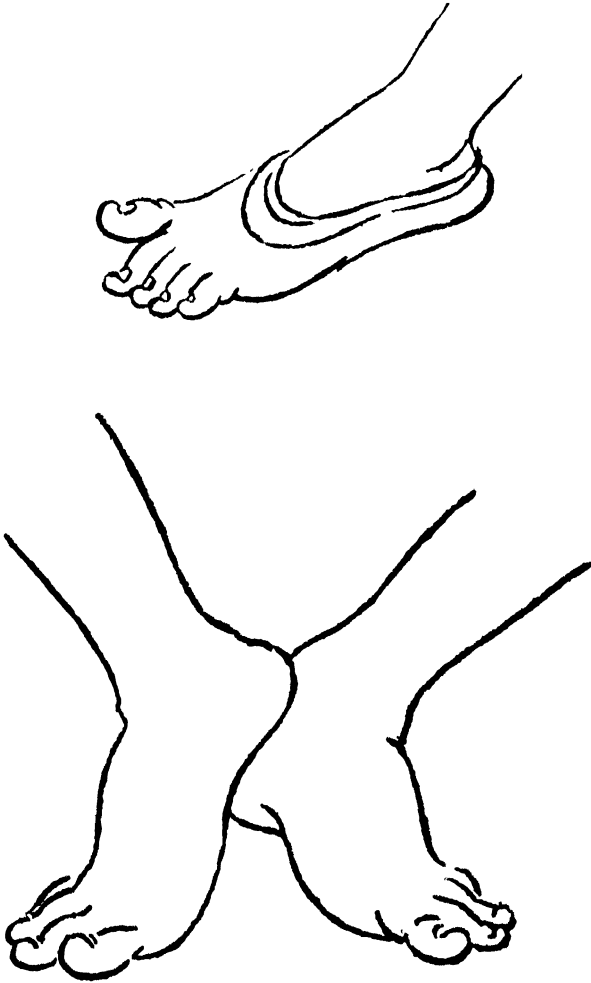
चित्र नं० २१

चित्र नं० २२

चित्र नं० २३

अजन्ता का रंग-विधान

अजंता का रंग-विधान सादा है। रंग चमकीले और अमिश्रित हैं। यद्यपि समय के प्रभाव से रंगों का बहुत कुछ सौन्दर्य नष्ट हो चुका है; फिर भी जो शेष है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि आज से हजारों वर्ष पहले यह रंग बड़े चमकदार रहे होंगे। अजंता की सभी आकृतियों में रंग का एक लेप किया गया है। अंधेरा-प्रकाश का व्यवहार केवल स्थानीय गोलाई दिखाने के लिए किया गया है।

अजंता का रंग-विधान विशेष प्रकार का है। साधारण रूप से वस्तुओं को गहरी पृष्ठभूमि पर हलके रंगों में उभारा गया है। चित्रों के रंग संगति के दृष्टि से सादा और प्रभावपूर्ण हैं। पाश्चात्य लौकिक चित्रों का भारीपन उनमें नहीं आने पाया। अधिक

अन्तर पर स्थित आकृतियों को गहरा तथा उस स्थान की पृष्ठभूमि को दूरी के कारण हलका दिखाया गया है। इस तरह चित्रों में एक अपूर्व संगति आगई है।

नारी अजंता में नारी का चित्रण विशेष महत्वपूर्ण है। अजंता की नारी शारीरिक सौन्दर्य के आदर्श रूप में अंकित की गई हैं। वह सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति कराती हैं। ग्रीक नमूने यद्यपि अजंता के समान ही शारीरिक सुन्दरता के परम उत्कर्ष को लिए हुए है पर उनमें भारतीय सौन्दर्यगत सूक्ष्मता का आभास नहीं मिलता।

जैसा कि अन्यत्र लिखा जा चुका है, इस सौन्दर्यगत सूक्ष्मता का कारण यह है कि अजंता की नारी का चित्रण वैयक्तिक रूप में नहीं हुआ— सामान्य (Type) रूप में हुआ है। (चित्र नं० २४, २५, २६ और २७)

चित्र नं० २४

चित्र नं० २५

चित्र नं० २६

चित्र नं० २७

आलंकारिक नमूनें

अजंता में डिज़ाइनों की भरमार है। संतुलन और प्रवाह के सिद्धान्तों के अनुसार सजाये हुए ये डिज़ाइन इतने विविध और संख्या में इतने अधिक हैं कि आश्चर्य होता है। (चित्र नं० २८, २६) डिज़ाइनों में—देव, मानव, पशु, पक्षी, हाथी, बैल, फूल, फल तथा रेखाएँ और ज्यामित की विभिन्न आकृतियाँ-स्वतन्त्रता से व्यवहृत हुए हैं। सबसे अधिक प्रधानता कमल को दी गई है।

आभूषणों और मुकटों के चित्रण में भी डिज़ाइनों की अनेकरूपता, उनका बारीक काम तथा तत्कालीन शिल्प से उनका अत्यधिक सम्बन्ध दर्शक को बहुत प्रभावित करते हैं।

चित्र नं० २८

चित्र नं० २६

भित्तचित्रों की टेकनिक

अजंता की टेकनिक टेम्परा और भित्तचित्र-टेकनिक का सम्मिलित रूप है। कुछ लोग इसे केवल भित्तचित्र-टेकनिक ही मानते हैं; पर उनकी यह धारणा भ्रामक है। यहाँ भित्तचित्र-टेकनिक का अभिप्राय उस कला से है जो ईसवी सन् के पूर्व योरप में प्रचलित थी और विट्रूविअस तथा प्लिनी के भित्तचित्रों में देखी जाती है। इस प्रणाली में धरातल तैयार हो जाने पर उसके सूखने से पूर्व ही रंग-भरना आरम्भ कर दिया जाता है। काम का जल्दी होना आवश्यक है—ऐसी दशा में थोड़ा-सा धरातल बना कर ही उस पर रंग का काम पूरा किया जाना चाहिए। इसलिए धरातल में अनेक जोड़ भी होंगे। दूसरी बात यह है कि धरातल का परत कम-से-कम पाव इञ्च मोटा होना चाहिए, जिससे उसमें नमी रहे। एक और बात जो ध्यान देने की है कि इट्रूरिअनों के भित्तचित्र नम चट्टानों में बनाए गए हैं। अजंता के भित्तचित्रों में न तो जोड़ हैं और न उतना मोटा परत है—अजंता का अन्तिम परत कठिनता से १/३०" मोटा होगा। इन स्थानों की जलवायु भी उतनी नम नहीं है। अजंता की टेकनिक मिश्र और मैसोपोटामिया के प्राचीन भित्तचित्रों से बहुत मेल खाती है। उनमें भित्तचित्र-टेकनिक और टेम्परा-टेकनिक का सम्मिलित प्रयोग है। इस पद्धति में सम्पूर्ण धरातल तैयार करके सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। इसके बाद इसको कई बार चूने मिले हुए पानी से पूरी तरह भिगोया जाता है। नम किए हुए धरातल पर उसी प्रकार के रंगों से, कुछ चूना मिला कर, चित्रण आरम्भ किया जाता है। भित्तचित्र-टेकनिक में रंग धरातल में घुल जाने से धरातल का ही अंग हो जाते हैं; परंतु टेम्परा-प्रणाली में रंग का पृथक परत होता है। अजंता के भित्तचित्र इसी दूसरी पद्धति पर बनाए गए हैं।

सर्वप्रथम चित्रांकन लाल रंग की पुष्ट रेखाओं में हुआ है। इसके पश्चात् स्थानीय रंग 'फ्लैटवाश' करके दिये गए हैं। तत्पश्चात् बारी-

कियाँ दिखाई गई हैं। बाद में, जहाँ कहीं लाल रेखाओं में सुधार करना हुआ है, ब्राउन या काले रंग की रेखाओं से किया गया है। यह पद्धति भी मिश्र के भित्तचित्रों से बिलकुल मिलती हैं।

जोगीमारा और अजंता

विषय जोगीमारा का विषय-क्षेत्र बहुत संकुचित है। केवल मनुष्यों, पशुओं तथा भवनों का चित्रण हुआ है। अजंता का विषय बहुत व्यापक है। बुद्ध के जन्म जन्मान्तर की कथाओं का चित्रण होने के कारण, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, फल, फूल सभी चित्रों के विषय बन गए हैं। जोगीमारा के चित्रों का विषय कुछ अस्पष्ट सा है। कुछ विद्वान उसको उस स्थान की देवदासियों से सम्बन्धित बताते हैं और कुछ की दृष्टि में वह ग्रीक है। अजंता का विषय स्पष्टतः बौद्ध है।

शैली जोगीमारा गुफाओं के चित्र अनुभवहीन और अकुशल हाथों की रचना है। अजंता की शैली पुष्ट और सजीव है। जोगीमारा की रेखाओं में अजंता का प्रवाह और अटूटता नहीं है; पर सम्भवतः यह इसलिए है कि पूर्व रेखाओं को उभारने का असफल प्रयत्न किया गया है। रेखांकन की दृष्टि से भी जोगीमारा गुफाओं में अजंता के समान भाव-प्रवणता नहीं। मुद्राओं में जड़ता है तथा अंगभंगिमाएँ निश्चेष्ट हैं। अजंता के रंग चटकीले—लाल, पीला, नीला, हरा प्रायः सभी प्रकार के हैं। जोगीमारा में रंगों में यह विविधता नहीं मिलती केवल लाल (गेरू) और सफेद (खड़िया) का प्रयोग हुआ है।

टेकनिक जोगीमारा के भित्तचित्रों की टेकनिक में भी वही अकुशलता लक्षित होती है। कहीं-कहीं तो चित्र गुफा की खुरदरी दीवारों पर ही अंकित किए गए हैं। कहीं पर आधे सूत के परत हैं, जिससे बहुत कम सुधार हो सका है। अजंता की

टेकनिक निश्चित रूप से महान है।

दोनों शैलियाँ भारतीय शैली का उत्तरोत्तर विकसित रूप है। परन्तु दोनों बौद्ध शैली का अंग नहीं कही जा सकती।

आधुनिक शैली में अजन्ता से प्रेरणा

आधुनिक चित्रकला ने अजन्ता की शैली से महान प्रेरणा ग्रहण की है तथा उत्तरोत्तर इसके अधिक प्रयोग में आने की सम्भावना है। आधुनिक बङ्गाल-स्कूल की प्रेरणा के प्रधान श्रोत ये ही चित्र हैं। भारतीय कला के प्रायः सभी प्रधान कलाकारों ने रेखा, भाव, रङ्ग-योजन अजन्ता से ग्रहण किये हैं। बसु बाबू के चित्रों में तो अजन्ता की आत्मा एक बार फिर बोल उठी है। अमृतशेरगिल ने इन चित्रों की गढ़नशीलता और शैली की सरलता को लाने का प्रयत्न किया है।

अजन्ता के चित्रों के ग्रहण का जैसा विस्तृत क्षेत्र होना चाहिए वैसा नहीं है। आधुनिक शैलीकार वाटरकलर का प्रयोग करते हैं। इसलिए अजन्ता के चित्रों की गढ़नशीलता उनमें नहीं आती। चित्रों में गढ़नशील होने से सजीवता आ जाती है। चित्रकारों ने डिजाइन और आलंकारिक नमूनों के महत्व को बिलकुल भुला दिया है। अजन्ता के डिजाइन इतने विभिन्न और असंख्य हैं कि चित्रकला के अनेक क्षेत्रों में नवीन प्रेरणा दे सकते हैं। भारतीय चित्रकारों ने अजन्ता की रेखाओं का अनुकरण तो किया है पर उनमें सूक्ष्म निरीक्षण की कमी है। भावों और मुद्राओं में अजन्ता के समान विचार-स्वातन्त्र्य नहीं दिखाई देता। फिर भी चित्रकार अजन्ता की शैली को बड़ी सीमा में अपनाने और अजन्ता के मूल सिद्धान्तों को हृदयंगम करने की चेष्टा कर रहे हैं, जिससे इस शैली के प्रयोग में आने की काफी सम्भावना हो गई है। अजन्ता के इन चित्रों ने हमारे अतीत को महान बनाया है और अब इनकी प्रेरणा हमारे भविष्य को महान बनाएगी।

६–बौद्ध चित्रकला की अन्य शैलियां

बाघ गुफाएँ बाघ की गुफाएँ विन्ध्यपर्वत श्रेणियों में नर्मदा की सहायक बाघ नदी के किनारे पर स्थित है। इसी के समीप का गाँव बाघ कहलाता है और इसी के आधार पर इन गुफाओं का नाम भी पड़ा है। बाघ ग्वालियर रियासत के अमझेरा जिले में स्थित है। वाघ पहुँचने का मार्ग बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे के म्हाओ स्टेशन से सड़क द्वारा लगभग ६० मील है।

काल-निर्णय बाघ के चित्रों के काल-निर्णय के लिए संतोषजनक प्रमाण नहीं मिलते। इस स्थान का इतिहास भी इस विषय में मौन है। यद्यपि अजन्ता और वाघ की गुफाओं के बीच का अन्तर १५० मील से अधिक नहीं है; पर इनके बीच में नर्मदा के आ जाने से यह सम्भव है कि वे विभिन्न शासकों के राज्य में रही हों। फिर भी वाघ के चित्रों के देखने से पता चलता है कि इन गुफाओं के चित्र अजन्ता की गुफाओं के बाद के चित्रों से बहुत मिलते हैं और वे सातवीं शताब्दी के कहे जा सकते हैं।

विषय बाघ के भित्तचित्रों का सबसे अधिक सुरक्षित भाग नं० ४ और ५ की गुफाओं में मिलता है। परन्तु ये चित्र भी इतने धुँधले और अस्पष्ट हैं कि इनके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इनका विषय न तो पूर्णतया धार्मिक है और न लौकिक ही। पर सम्भवतः इसके कुछ चित्रों की रचना— भगवान बुद्ध की जीवन घटनाओं के आधार पर तो नहीं—जातक और अजन्ता की कथाओं को लेकर की गई है। बौद्ध जातकों से इन चित्रों को मिला कर देखा गया है। ये चित्र कुछ कथाओं से कुछ अंशों में मिलते हैं। महावंश नामक बौद्ध प्राचीन ग्रन्थ में वर्णित रीति-रिवाजों के आधार पर भी हम चित्रों का विषय बौद्ध मान सकते हैं।

गुफाओं के भित्तचित्र वाघ में गुफाओं की संख्या नौ हैं; परन्तु जैसा ऊपर कहा जा चुका है, केवल ४ और ५ नम्बर की गुफाओं के चित्र ही स्पष्ट दिखाई देते हैं। इन गुफाओं में अनेक सुन्दर चित्र हैं।

रानी और सखी

चित्र नं० ३०

पहले दृश्य में अग्रभूमि पर एक रानी और उसकी सखी बैठी (चित्र नं० ३०) रानी असह्य वेदना के आधिक्य में बाएँ हाथ से अपने मुख को ढके हुए है। सम्पूर्ण चित्र को मुखरित करती हुई दाएँ हाथ की हस्तमुद्रा विशेष दर्शनीय है। इस चित्र में करुण रस का बड़ा सफल परिपाक हुआ है।
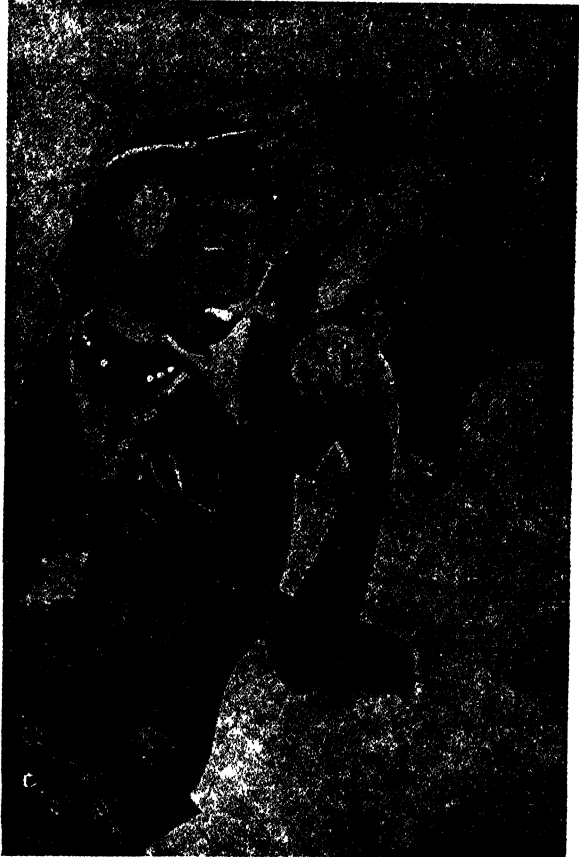
चित्र नं० ३१

चौथे दृश्य में सात गायक नारियाँ एक अन्य नर्तकी के चारों ओर नृत्य कर रही हैं। (चित्र नं० ३१) इनमें से कुछ के हाथों में मंजीरे, कुछ के हाथों में मृदंग और कुछ के हाथों में डण्डे हैं। यह चित्र अजन्ता की नं० १ की गुफा के चित्र से बहुत मिलता है। वाद्य-यंत्रों और भंगिमाओं की समानता दर्शनीय है। आकृतियों की मुद्राओं में भी अजन्ता की सी सजीविता है।

इसी के समीप दूसरा चित्र भी गायकों का है। वास्तव में यह एक ही चित्र के दो भाग हैं। इसमें छः स्त्रियाँ इधर-उधर खड़ी हैं। स्त्रियों में से एक ढोलक बजा रही है। तीन के हाथों में दो-दो डण्डे या चट्टे हैं और शेष दो के पास मंजीरे हैं। सम्पूर्ण चित्र भावपूर्ण है। भावों में वही अजन्ता की सी सुकुमारता और विविधता विद्यमान है।

एक अन्य चित्र में घोड़ों के सवारों का चित्रण है। ये चार या पाँच पंक्तियों में हैं। एक व्यक्ति सब की ओर विस्मय की दृष्टि से देख रहा है मानो उसका घोड़ा खो गया हो। घोड़ों का चित्रण बड़ा स्वाभाविक हुआ है। उससे उनके चरित्र की व्यञ्जना होती है।। लगाम खींचने पर एक घोड़े की गर्दन मुड़ी की मुड़ी रह गई है।

एक चित्र में किसी राज—समारोह का चित्रण है। महावत, राजा और उसके अनुगामी सभी शांत मुद्रा में हैं। एक सेवक छत्र लिए हुए है तथा दूसरे के हाथ में चँवर है। हाथी के ऊपर पीली झूल पड़ी हुई है और वह मंथर गति से आगे बढ़ रहा है।

नं० ३ की गुफा में एक झुकती हुई बालिका का चित्र है, जो अस्पष्ट है। नं० २ की गुफा की छतों पर कुछ डिजाइन बने हुए हैं। चौथी गुफा के चारों ओर भी डिजाइन बने हुए हैं। ये डिजाइन शैली में अजंता के ही समान हैं। (चित्र नं० ३२, ३३)
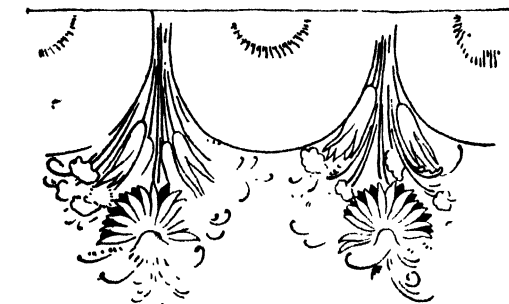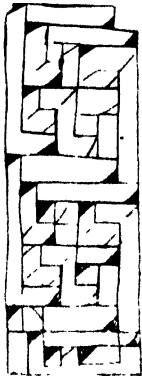
बाघ गुफा नं० ४]   [चित्र नं० ३२

बाघ गुफा नं० ४] [चित्र नं० ३३

शैली अजन्ता की शैली और बाघ की शैली में कोई तात्विक अन्तर नहीं है। जो कुछ अन्तर दिखाई देता है। वह समय, स्थान और व्यक्तित्व की विभिन्नता के कारण आ गया है। संयोजन का क्रम, रेखाङ्कन की सफलता, भावों का चित्रण आदि में वह अजन्ता के निकट ही है। हाँ, बाघ की शैली में कुछ हीनता के चिह्न अवश्य मिलते हैं।

सित्तनवासल गुफाएँ सित्तनवासल की गुफाओं में भी ऐसे चित्र मिले हैं, जो शैली में अजंता से बहुत समानता रखते हैं। ये गुफाएँ मद्रास प्रान्त में पल्लव राज्य के मध्य में कृष्णा नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित हैं। अजन्ता और बाघ के 'काल' के विषय में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता; परन्तु सित्तनवासल की गुफाओं के विषय में यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि महेन्द्रवर्मन प्रथम का राज्यकाल (६००—६२८ ई०) उनका भी निर्माण-काल है।

किसी समय 'सित्तनवासल' का मन्दिर पूरी तरह सजा हुआ था परन्तु अब तो इन चित्रों के अवशेष मात्र बचे हैं। ये चित्र छत, खम्भों के ऊपरी भागों पर बने हुए हैं।

बरामदे की छत के मध्य में एक बड़ा संयोजन दिखाई देता है। इसमें कमल-युक्त एक तालाब का चित्रण हुआ है बीच-बीच में मछलियाँ, घोड़े, हंस, हाथी और भैंसे तथा तीन मनुष्य कमलनालों को पकड़े हुए दिखाए गए हैं। उनके शरीर का रंग, उनमें प्रकाश छाया का चित्रण तथा उनके मुख पर दिखाए गए भाव बहुत सजीव हैं। यह चित्र जैनों के धार्मिक इतिहास की किसी घटना से सम्बन्ध रखता है।

इसी मंदिर में अर्धनारीश्वर भगवान् शंकर का चित्र है। भगवान के मुखमण्डल से करुणा और शांति टपक रही है। रेखाओं में अद्भुत मार्दव है। खम्भों पर नर्तकियों के चित्र हैं। ये चित्र

बड़े सजीव हैं और चित्रकार ने ऊँची सौन्दर्य-भावना से प्रेरित होकर इनकी रचना की है। इसी मंदिर में एक कमलनाल पकड़े हुए गंधर्व का चित्रण हुआ है। चित्रों का विषय अधिकांश में जैन ज्ञात होता है।

शैली चित्रों का विषय चाहे कुछ भी हो परन्तु शैली में स्पष्टतः तत्कालीन बौद्ध शैली की छाप है। नर्तकियों का अंकन, उनकी भावभंगी और हस्तमुद्राएँ तथा अन्य चित्रों की रचना-प्रणाली को देख कर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इनकी शैली अजंता और बाघ के इस प्रकार के चित्रों की शैली से निकट साम्य रखती है।

बादामी गुफाएँ बम्बई की बादामी गुफाओं में पाए गए चित्रों की शैली भी सामान्य बौद्ध शैली के अंतर्गत आती हैं।

सिगरिया गुफाएँ लंका की सिगरिया गुफाओं के भित्तचित्र अजंता के समान ही महत्वपूर्ण हैं। वास्तव में अजंता, वाघ और सिगरिया ही ऐसे स्थान हैं, जिनके भित्तचित्र बौद्ध शैली का सच्चे रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं।

विषय की दृष्टि से ये चित्र अजंता के समान हैं। हाथ में फल-फूल या वाद्य-यन्त्रों को पकड़े हुए आकारों का चित्रण वैसा ही मनोरम है जैसा अजंता में हुआ है। (चित्र नं० ३४, ३५)

सिगरिया] [चित्र नं० ३४

शैली शैली की दृष्टि से एक बात महत्वपूर्ण है। सिगरिया की शैली में अजंता जैसी कार्यपटुता नहीं दिखाई देती। पर इसका कारण यह है कि सिगरिया के कलाकार में 'व्यक्तित्व' का तत्व अधिक आगया है। यद्यपि रेखाएँ अजंता के समान ही भावपूर्ण हैं और निश्चयात्मकता से खींची गई हैं; परन्तु उसमें एक शक्ति और स्वतंत्रता है, जो सचमुच आश्चर्यजनक है। शैली का यह तत्व दर्शक को सित्तन वासल की शैली में भी मिलेगा।

सिगरिया] [चित्र नं० ३५

दूसरी बात आकृतियों के उभार-सम्बन्धी है। इसमें सिगरिया की गुफाओं के चित्र तत्कालीन शिल्प से बड़ा साम्य रखते हैं।

तीन बौद्ध शैलियाँ १७ वीं शताब्दि के इतिहासकार तारानाथ ने बौद्ध शैलियों के विषय में कुछ उल्लेख किया है। परन्तु उसका वर्णन अस्पष्ट सा है। वह लिखता है कि प्राचीन

बौद्ध कला की तीन शैलियाँ प्रचलित थीं—देव, यक्ष तथा नाग। देव शैली मगध के आस-पास प्रचलित थी, जो बुद्ध के पश्चात् कई शताब्दियों तक (लगभग ६०० ई० पू० से ३०० ई० पू० तक) चलती रही। यक्ष शैली का सम्बन्ध तारानाथ ने 'अशोक' से किया है। लेखक तारानाथ की दृष्टि में इस शैली के चित्रकार अतिमानव थे, जिनकी कला अत्यन्त आश्चर्यजनक थी। नाग शैली नागार्जुन के समय में तीसरी शताब्दि के प्रारम्भ में प्रचार में आई। इन सभी शैलियों में यथार्थवादी तत्व प्रमुख थे, जिसे तारानाथ ने इस प्रकार लिखा है: "देव, यक्ष और नागों की रचनाएँ अपनी यथार्थता के कारण वर्षों तक लोगों में भ्रांति उत्पन्न करती रहीं।"

तीसरी शताब्दि के पश्चात् कला की अवनति हुई। इसके बाद पुनः उन्नति आरंभ हुई। उस समय भारतवर्ष में कला-शैलियों के तीन मुख्य विद्यापीठ थे। मध्यप्रदेश विद्यापीठ—जिसमें उत्तरप्रदेश आता है। इसकी स्थापना पांचवीं या छठी शताब्दि के बुद्धपक्ष राजा के राज्य के बिम्बसार नामक चित्रकार ने की। इस विद्यापीठ के चित्रकार असंख्य थे और इनकी शैली प्राचीन देवों से बहुत मिलती थी। पश्चिमी विद्यापीठ—राजस्थान में था। इसका मुख्य कलाकार 'श्रंगाधर' मारवाड़ प्रदेश में उत्पन्न हुआ था। इसकी शैली यक्ष शैली से मिलती थी। पूर्वी विद्यापीठ—इस का क्षेत्र बंगाल था। इसका समय 'देवपाल-धर्मपाल' का राज्यकाल अर्थात नवीं शताब्दि है। इसकी शैली प्राचीन नाग शैली से मिलती थी। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत, ब्रह्मा, नैपाल, काश्मीर आदि में भी विविध शैलियाँ प्रचलित थीं पर तारानाथ के शब्दों में किसी न किसी रूप में वे सब प्राचीन तीन शैलियों से प्रेरणा ग्रहण करती थीं।

१०—मध्यकाल की चित्रकला
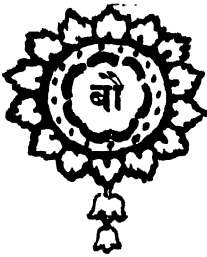
द्ध कला के स्वर्ण-युग के पश्चात् एक ऐसे लम्बे युग का आरंभ होता है, जिसे भारतीय चित्रकला के अधःपतन का युग कहा जा सकता है। मन्दिरों में नव हिन्दू धर्म के उत्थान से प्रेरणा पाकर मूर्ति और वास्तु कला की पर्याप्त उन्नति हुई, जिसके उदाहरण एलोरा और एलीफेन्टा की गुफाओं में देखे जा सकते हैं। किन्तु चित्रकला-सम्बन्धी सामग्री, जो इस काल में हमें प्राप्त हैं, सचमुच बहुत निम्न श्रेणी की है।

मध्यकाल के ६०० वर्ष के युग को (८ शताब्दि से १७ वीं शताब्दि तक) सुविधा की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

पूर्व मध्यकाल—(ई० सन् ७०० से १००० तक) इसमें एलोरा के भित्तिचित्र आते हैं। इस काल के साहित्य में भी चित्र-विषयक काफी चर्चा मिलती है।

उत्तर मध्यकाल—(ई० सन् १००० से १६०० तक) उदयादित्य के बनवाये हुए भित्तिचित्र और जैन तथा बौद्ध पुस्तकों के तालपत्रों पर अंकित चित्र मिलते हैं।

पूर्व मध्यकाल

एलोरा के भित्तिचित्र एलोरा के भित्तिचित्र यद्यपि अजंता की परम्परा में ही हैं परन्तु इनमें पतन के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं। रेखाओं में सजीवता और गति नहीं है तथा वे भाव-वहन में सर्वथा असमर्थ हैं। शैली अजंता से पृथक नहीं, पर उससे हीन और निम्न श्रेणी की है।

इस काल के साहित्य में चित्रों की पर्याप्त चर्चा मिलती है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण इसी काल का है। इस प्रसिद्ध ग्रन्थ का कुछ भाग चित्र-समीक्षा पर है। यह भाग 'चित्रसूत्र' है। चित्रों के लक्षण, अंकन तथा वर्ण-विधान पर विस्तारपूर्वक लिखा गया है। भिन्न-भिन्न अवस्था तथा प्रकृति के मनुष्यों के शारीरिक अनुपात, रूप और वस्त्र कैसे होने चाहिए इसका विशद विवेचन है। लेखक ने 'रस-चित्रों' को, जिनका आधार वस्तुगत यथार्थ न होकर कलाकार का रस-जगत होता है, सर्वोच्च स्थान दिया है। लेखक का कथन है कि नटों के अभिनय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किए बिना चित्रकार अच्छी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। इसी सूत्रमें अजंता की चित्रकला की अंगभंगिमाओं, मुद्राओं इत्यादि का रहस्य प्रकट किया गया है। ऋतुओं के चित्रण का भी बड़ा ही विस्तृत वर्णन है। वसंत, शिशिर, ग्रीष्म, वर्षा आदि विभिन्न ऋतुओं में क्या-क्या चित्रित किया जाय, भिन्न-भिन्न रसों की योजना में क्या-क्या वस्तुएँ और दृश्य लाए जायें आदि का बड़ा तर्कसंगत विवेचन हुआ है। काव्य जगत में रस का जो स्थान है, वही स्थान उसका चित्रकला के क्षेत्र में है—यह इस सूत्र से स्पष्ट मालूम हो जाता है।

उपरोक्त विवरण चित्र-समीक्षा सम्बन्धी है। इसके अतिरिक्त ऐसे विवरण भी तत्कालीन साहित्य में मिलते हैं, जिनसे प्रकट होता है कि उस समय चित्रकला राज-परिवार की शिक्षा का एक अंग बन गई थी। क्षेमेन्द्र द्वारा रचित 'बृहत्कथा मंजरी' में जो १०३७ ई० की रचना है, राजकुमार विक्रम की एक कथा का वर्णन है, जिसमें उसके दर्बार का एक चित्रकार राजकुमार को एक पुस्तकाकार रूपावली भेंट करता है। राजकुमार की दृष्टि एक सुन्दर रूप पर ठहर जाती है। वह उसको पाने को व्यग्र हो उठता है। यह राजकुमारी मलयवती है, जिसके साथ अंत में उसका विवाह सम्पन्न होता है।

संस्कृत के नाटककार भास के नाटक 'दूतवाक्य' में एक प्रसंग आता है, जिसमें दुर्योधन द्वारपाल से द्रौपदी के चीर-हरण का चित्रपट लाने के लिए कहता है। वह चित्रपट की रंग-योजना, भावाभिव्यक्ति तथा रेखाओं की स्पष्टता की प्रशंसा करता है।

अहो अस्य वर्णाढ्यता, अहो भावोपपन्नता, अहो युक्तलेखता। सुव्यक्तं मालिखितोऽयं चित्रपटः।

अर्थात् 'रंग-विधान में वैभवपूर्ण, भावों में महान सुन्दर आलेखित यह चित्रपट धन्य है।'

भवभूति के 'उत्तर रामचरित' के प्रथम अंक का 'चित्रदर्शन दृश्य' भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। नाटक का आरंभ चित्रों की चर्चा से ही होता है। सीता के मनोविनोदार्थ राम सीता और लक्ष्मण के साथ उन चित्रों को देखते और प्रशंसा करते हैं, जिनमें राम के बचपन से लेकर सीता की अग्नि-परीक्षा तक के चित्र हैं। सीता राम के एक चित्र का वर्णन करती हैं—

"आकार सौम्य और सुन्दर है। मुखमण्डल भोलेपन से भरा हुआ है और काक-पक्षी की भाँति कटे हुए केशों से कमनीय है। आर्यपुत्र की ओर पिताजी विस्मयपूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं। उन्होंने अनायास ही शिवजी के धनुष को तोड़ डाला है।"

ऊपर के प्रसंगों से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

१. चित्रकला का व्यवहारिक क्षेत्र बढ़ गया था—उसमें शास्त्रीय विवेचन आवश्यक होगया था।

२. ये चित्र धार्मिक न होकर लौकिक थे तथा उनका प्रचार राज-दर्बार की कला के रूप में था।

३. जैन और बौद्ध पुस्तकों के चित्रों की भाँति ये चित्र पुस्तकाकार या चित्रपटों के रूप में थे।

४. बाद के जैन, बौद्ध तथा लौकिक चित्रों का इसी परम्परा का विकसित रूप होना संभव है।

उत्तर मध्यकाल

उत्तर मध्यकाल में भित्तिचित्रों की परम्परा समाप्त सी हो जाती है। उदयादित्य के बनवाए भित्तिचित्रों के अतिरिक्त कोई उदाहरण नहीं मिले हैं। इस काल में जो चित्र उपलब्ध हुए हैं, वे अधिकांश में पुस्तक-चित्र ही हैं। इनको दो भागों में बांटा जा सकता है—१. बौद्ध पुस्तकों के चित्र २. जैन पुस्तकों के चित्र।

बौद्ध पुस्तकों के चित्र बौद्ध पुस्तकों के चित्र प्राचीन हैं उनका समय दसवीं शताब्दि से तेरहवीं शताब्दि तक का है। इस प्रकार के चित्र मुख्यतः बङ्गाल, बिहार और नैपाल में मिले हैं। शैली की दृष्टि से इन तीनों स्थानों में मिली हुई शैली बौद्ध पुस्तकों के चित्रों की सामान्य शैली कही जा सकती है।

पुस्तकें उत्कृष्ट तालपत्रों पर लिखी गई हैं। पत्रों पर बीच-बीच में महायान धर्म से सम्बन्ध रखने वाले देवी-देवताओं और बौद्धों के चित्र बने हुए हैं। भगवान बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएँ भी इधर-उधर अङ्कित हैं।

इस सामान्य शैली में यद्यपि अजन्ता की परम्परा वर्तमान है पर ह्रास के लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं। चित्रों के भाव, मुद्राओं तथा भंगिमाओं में जड़ता है। चहरों को इस दृश्या में अंकित किया गया है, जिसमें केवल एक आँख पूरी तथा दूसरी का केवल $\frac{3}{4}$ भाग ही दिखाई देता है। मुख की अपेक्षा नाक बहुत लम्बी है। रङ्गों में लाल, पीला, हरा, गुलाबी, बैजनी, काला, सफेद व्यवहार में लाये गये हैं।

जैन चित्रकला की परम्परा जैन चित्र-परम्परा भी उतनी ही प्राचीन है जितनी बौद्ध चित्र-कला की परम्परा; तथा दोनों ही का समान अवस्थाओं में विकास हुआ है। उड़ीसा में उदयागिरि और खन्दागिरि की लम्बी गुफाओं में ई० पू० दूसरी तथा पहली शताब्दि के जैन शिल्प के नमूने मिलते हैं। इन्हीं में से एक गुफा में जैन भित्तिचित्रों के अवशेष मिलते हैं। सातवीं शताब्दि की सित्तनवासल के मन्दिरों की चित्रकला स्पष्टतः जैन है। 'पार्श्व चरित' के पाँचवे सर्ग में 'नेमी' तीर्थङ्कर के एक चित्र का उल्लेख मिलता है। डा० कुमारस्वामी के शब्दों में 'सभी हस्तलिखित ग्रन्थों के चित्रों के संयोजन के व्यावहारिक परिचय से यह बात बहुत स्पष्ट है कि प्राप्त चित्रकला किसी प्राचीन काल से चली आ रही परम्परा का विकास है, जिसमें जैन चरित्रों की घटनाएँ अवगत नियमों के आधार पर बहुत काल से चित्रित की जाती रही हैं।'

जैन पुस्तकों के चित्र ये चित्र श्वेताम्बर सम्प्रदाय की कल्पसूत्र, अङ्ग-सूत्र, नेमिनाथचरित तथा कथारत्नसागर आदि पुस्तकों में मिलते हैं। 'बसन्तविलास' नामक चित्र पट तथा अन्य सचित्र ग्रन्थ भी हैं, जिनका विषय जैन नहीं हैं, पर शैली स्पष्टतः जैन है। पुस्तकें तालपत्र पर भी लिखी गई हैं और कागज पर भी। सबसे प्राचीन चित्रित ग्रन्थ 'कल्पसूत्र' है। इसके चित्र वर्गाकार तालपत्रों पर बनाए गए हैं। विषय की दृष्टि से ये चित्र बहुत कम अंशों में पुस्तक के विषय से सम्बन्धित कहे जा सकते हैं। चित्रों के हाशियों पर राग-रागनियों और ताल आदि के चित्र बने हुए हैं। नृत्य आदि के भी चित्र हैं। संक्षेप में, विषय की दृष्टि से यह शैली पर्याप्त विस्तृत है।

शैली इस शैली की सीमान्त रेखाएँ स्याही से खींची गई हैं। ये चित्र शद्ध आलेखन है, और भारतीय सुलिपि के एक अङ्ग मात्र मालूम होते हैं। लिपियों के शृङ्गार की दृष्टि से ये

सचमुच बहुत अच्छे बन पड़े हैं। परन्तु अंकन का सधापन उनमें नहीं। रेखाओं के अंकन में अनावश्यक प्रयास नहीं किया गया। वे साधारण लिपि के रूप में अंकित हैं। यद्यपि रेखाएँ मोटी और भद्दी हैं, फिर भी उनका भद्दापन कुशल हाथों की कुशलता का द्योतक है, जल्दवाजी का नहीं। रेखाओं में अपने ढङ्ग की काफी गति है।

चित्रों में अंग-भंगिमाएँ और मुद्राएँ गतिहीन हैं। चित्र प्रायः भाव-शून्य है। इनमें मौलिकता नाम मात्र को भी नहीं है—सब कुछ रूढ़ि-वद्ध और आलंकारिक है।

पशु-पक्षी और वस्त्रों आदि का चित्रण अस्वाभाविक है। उनको देखकर कठपुतली का आभास होता है। प्रकृति के चित्रण में अस्वाभाविक आलंकारिकता से काम लिया गया है। शारीरिक चित्रण में चित्र कुछ विशेष प्रकार के हैं—कानों तक मिची आँखें, पतली कमर और ऊपर के वक्ष को चौड़ापन अन्य पूर्ववर्ती रचनाओं से स्पष्टतः भिन्न है।

घटनाओं के चित्रण का ढंग सुन्दर है। अंकन में पूर्ण संतुलन है तथा पृष्ठ का संयोजन कलापूर्ण हैं।

बहुत ही कम रंगों का प्रयोग हुआ है, परन्तु वे खूब तेज हैं। उनकी योजना सुन्दर है। लाल और पीले रंगों की प्रधानता है।

शैली शैली की दृष्टि से इस शैली की तुलना 'बौद्ध पुस्तकों की शैली' तथा बाद में प्रचलित 'रागमाला-चित्रों की शैली' से की जा सकती है। बौद्ध पुस्तकों की शैली में अजंता की छाया है। फिर भी वह जैन शैली से मिलती है। 'रागमाला-चित्रों की शैली' जो राजपूत कला की प्रारंभिक रचना है। बौद्ध और जैन चित्र शैलियों से स्पष्टतः भिन्न हैं। रागमालाओं की चित्र शैली परंपरागत है और

अजंता के चित्रों से सीधी प्रेरणा ग्रहण करती है। 'पुस्तक चित्रों की शैलियों' से भिन्न उसमें एक अद्भुत भावुकता है।

शैली का नामकरण डा० कुमारस्वामी ने इस शैली को 'जैन चित्रकला' की संज्ञा दी है क्योंकि इस शैली के अधिकांश हस्तलिखित चित्रित ग्रंथ जैन धर्म से सम्बन्ध रखते हैं। श्री नानालाल चिम्मनलाल मेहता के मत में इस शैली के दूसरे चित्र (वसंत विलास के चित्र') गुजरात में पाए गए हैं। उनका कथन है कि इतिहासकार तारानाथ ने जिस प्राचीन पश्चिमी विद्यापीठ का उल्लेख किया है वह बहुत काल तक गुजरात में केन्द्रित रहा होगा। अतः शैली का नामकरण 'गुजरात' के नाम पर होना चाहिए। यद्यपि इस शैली के अधिकांश उपलब्ध चित्र पश्चिमी भारत में बने थे परन्तु अब पूर्व भारत में भी इस शैली के कुछ ग्रन्थ मिले हैं। अतः यदि इस शैलीको 'पश्चिम भारत शैली' का नाम दिया जाय तो भी वह भ्रामक ठहरता है। समीचीन यही प्रतीत होता है कि इस शैली को 'जैन चित्रकला' ही कहा जाय।
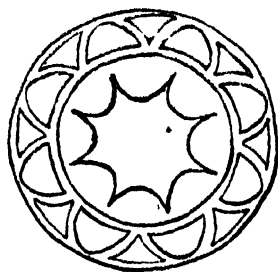
११—मुग़ल चित्रकला

ग़ल साम्राज्य की स्थापना के साथ-साथ भारतीय चित्रकला के इतिहास में मुग़ल चित्रकला का आरम्भ होता है। कुछ समय पूर्व मुग़ल कला को ईरानी चित्रकारी की एक शैली मात्र कहा जाता था जो स्थानीय विभिन्नता के कारण उत्पन्न हो गई थी। पर अब यह माना जाने लगा है कि मुग़ल कला का अपना पृथक अस्तित्व है और वह ईरानी प्रभाव से मुक्त न होकर भी पूर्ण भारतीय है।

शैली का जन्म, विकास उत्थान और पतन

मुग़ल चित्रकला का जन्म, विकास और उत्थान-पतन मुग़ल वंश के जन्म, विकास और उत्थान-पतन के साथ-साथ चलते हैं। मुग़ल चित्रकला मुग़ल सम्राट अकबर के राज्याश्रय में उत्पन्न हुई; वहीं उसका विकास भी हुआ। जहाँगीर के शासन-काल में वह अपने वैभव की पराकाष्ठा तक पहुँच गई। शाहजहाँ के राज्य-काल में मुग़ल शैली में पहले-पहल ह्रास के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं और औरंगजेब के समय में उसका पतन आरम्भ हो जाता है। वैसे तो मुग़ल चित्र—परम्परा अवध के नवाबी ज़माने के अन्त तक चलती रही, पर अब उसकी मृत्यु हो चुकी थी। इस प्रकार यह शैली ढाई-सौ वर्ष के अन्दर, अपने जन्म-विकास और उत्थान-पतन का युग देखकर, ब्रिटिश साम्राज्य के आरम्भ होते-होते छिन्न-भिन्न हो गई।

मुग़ल चित्रकला का पैतृक-गृह

मुग़ल चित्रकला का पैतृक गृह ईरान, समरकन्द और हिरात में था। यहीं तैमूर के वंशजों के आश्रय में ईरानी कला अपनी उन्नति की पराकाष्ठा को पहुँच कर विहज़ाद जैसे कलाकार उत्पन्न कर सकी। इस्लाम धर्म में चित्रकला का निषेध होने पर भी तैमूर के वंशजों में साहित्य, सङ्गीत और कला के प्रति विशेष रुचि रही। तैमूर वंशीय सम्राटों का यह कला-प्रेम वंशगत देन के रूप में कई पीढ़ियों तक चलता रहा।

मुग़ल साम्राज्य का जन्मदाता ऊँचे दर्जे का साहित्यिक, कला-प्रेमी तथा कला-समीक्षक था। बाबर ने विहज़ाद के चित्र स्वयं देखे थे और वह ईरानी शैली के उत्कर्ष से बड़े अंश तक प्रभावित था। विहज़ाद की आलोचना करते हुए अपनी आत्मकथा में वह एक स्थल पर लिखता है कि उसको दाढ़ी-विहीन चहरे का चित्रण ठीक न आता था : क्योंकि गर्दन अनुपात से अधिक लम्बी हो जाती थी। भारतीयों में उसे सौन्दर्य-चेतना का अभाव सदा खटकता रहा। जैसा कि भारतीय चित्रकला के इतिहास मे प्रकट होता है, बाबर का यही कला-प्रेम हिमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ के काल तक वंशगत देन के रूप में चलता रहा।

मुग़ल चित्रकला का आरंभ

मुग़ल चित्रकला का आरम्भ अकबर के राज्य-काल से समझना चाहिये। बाबर के दर्बार की सभ्यता बिल्कुल ही विदेशी थी। साथ ही उसने बहुत थोड़े समय तक ही राज्य किया। इसलिए वह भारतीय कला की इस दिशा में कोई प्रभाव न छोड़ सका। इसके पश्चात् हिमायूँ का जीवन शेरशाह से लड़ने ही में बीता। अपने २६ वर्ष के राज्य-काल में उसे कभी भी शान्ति न मिल सकी। नैराश्य-ग्रसित हिमायूँ जब ईरान के शाह तमहस्प के यहाँ पहुँचा तब दो चित्रकारों ख्वाजा

अब्दुस्समद शीराजी और विहज़ाद के शिष्य मीर सैयदअली से उसकी भेंट हुई। मीर सैयदअली को उसने 'अमीरहमजा' को चित्रित करने का कार्य सौंपा। यह कार्य २५ वर्ष में अनेक हिन्दू चित्रकारों के सहयोग से अकबर के शासन में जाकर पूरा हुआ। 'हमज़ानामा' के चित्र मुग़ल चित्रकला के आरम्भिक चित्र हैं और मुग़ल-चित्रकला के इतिहास में एक निर्दिष्ट स्थान रखते हैं। चित्रों में भारतीय और ईरानी कला का अद्भुत सामन्जस्य है, जो इससे पहले के चित्रों में नहीं है और यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अकबर के समय में चित्रित इस हमज़ानामा के चित्रों से ही मुग़ल कला का आरम्भ होता है।

'मुग़ल शैली' भारतीय शैली के रूप में मुग़ल शैली भारतीय शैली थी। सम्भव है, यह आरंभ में कुछ विदेशी रही हो; क्योंकि मुग़ल साम्राज्य की स्थापना के पहले ईरान में चित्रकला की काफी उन्नति हो चुकी थी और बाद को भी ईरान से मुग़ल सम्राटों का सम्पर्क बराबर बना रहा। पर विदेशी होते हुए भी जिस प्रकार मुग़ल भारतीय होगये, मुग़ल शैली में ईरानी प्रभाव प्रभाव होते हुए भी भारतीयता की प्रधानता रही। उदार सम्राट अकबर के दर्बार में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही प्रकार के कलाकार काम करते थे। अबुलफ़ज़ल ने अकबर के दर्बार के जिन प्रसिद्ध चित्रकारों के नाम दिए हैं—उनमें अधिकांश हिन्दू हैं। एक ओर ईरानी शैली के आचार्य अब्दुस्समद शीराजी, मीर सैयद अली, फरुक कालमुक आदि विदेशी चित्रकारों का उल्लेख है, साथ ही दसवन्त, वसावन, केशोदास आदि भारतीय शैली के हिन्दू चित्रकारों के नाम आते हैं। अबुलफ़ज़ल तो यहां तक लिखता है कि ईरानी आचार्य अब्दुस्समद के शिष्य दसवंत और वसावन अल्प समय में ही अपने उस्ताद से भी आगे बढ़ गए थे। ये चित्रकार

साथ-साथ मिलकर काम करते थे। मुग़ल शैली के एक ही चित्रकार द्वारा सम्पन्न किए गए चित्र बहुत थोड़े हैं। इस मेल, उदारता और सद्भावना का फल यह हुआ कि दोनों शैली के चित्रकारों ने एक दूसरे से बहुत कुछ सीखा-सिखाया। इस प्रकार दोनों शैलियों के समन्वय से भारतीय परम्परा में उद्भूत एक नवीन 'मुग़ल' नाम की शैली का विकास हुआ।

विकास और उत्थान जहाँगीर भी अपने पिता अकबर के समान ही उदार हृदय था। वह प्रकृति-सौन्दर्य का उपासक था और उच्चकोटि का कला-प्रेमी था। पर इससे भी अधिक वह एक कला-समीक्षक था। जहाँगीर का चित्र-परीक्षा का तो इस हद तक दावा था कि अनेक चित्रकारों द्वारा सम्पन्न एक ही चित्र में से वह प्रत्येक चित्रकार के व्यक्तिगत कार्य के अंश अलग-अलग कर सकता था। अकबर के समय के अनेक प्रसिद्ध चित्रकार जहाँ-गीर के समय में भी काम करते रहे। इसके अतिरिक्त नये चित्रकारों में ख्याति प्राप्त मन्सूर, गोवर्धन, विशनदास के नाम उल्लेखनीय हैं। जहाँगीर के समय में योरपीय चित्रों की नकलें भी बनने लगीं थीं।

अब तक शाहजहाँ-काल के चित्रों में ह्रास के चिह्नों का होना सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता था। पर ज्यों-ज्यों नये चित्र प्रकाश में आए हैं, इस मिथ्या धारणा का काफी खण्डन हो रहा है। विचित्तर, चितरमन, होनहार, अनूपचतर, बालचन्द शाहजहाँ के समय के उच्चकोटि के चित्रकार हैं। श्री नानालाल चिमनलाल मेहता का तो यहाँ तक दावा है कि विचित्तर के समकक्ष कोई चित्र-कार मुग़ल काल में हुआ ही नहीं। विषय तनिक विवादग्रस्त है। पर इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सामान्य रूप से इस युग के चित्रकार सजीवता और उत्कृष्टता में जहाँगीर कालीन चित्रों को नहीं पहुँच सके।

मुगल शैली के चित्रकार संतोष का विषय है, कि मुग़ल शैली के चित्रकारों के सम्बन्ध में काफी जानकारी प्राप्त है। इस जानकारी के प्रधान श्रोत अबुलफज़ल की 'आइने अकबरी' और जहाँगीर की आत्मकथा 'तुजुक जहाँगीरी' है। जिनके आधार पर प्रत्येक सम्राट तथा उसके समय के प्रमुख चित्रकारों के नाम दिए जाते हैं :

अकबर के समय में—भगवती, दशवन्त, नन्ना, बसावन, अब्दुल समद, फरूक़, तिरिया, सरवन मिस्कीन, जगन्नाथ।

जहाँगीर तथा शाहजहाँ के समय में—होनहार, समन्द, अनूपचितर, चितरमन, मनोहरसिंह, मन्सूर, मुहम्मद अफज़ल, समरकन्द का मुहम्मद नादिर, मीर हाशिम, फकीरुल्ला खाँ, धनसाह।
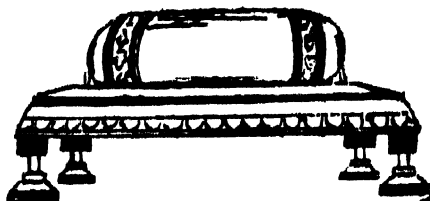
१२–मुगल शैली के चित्र

द्धान्त रूप से इस्लाम धर्म चित्रकला के विरुद्ध है। यद्यपि तैमूर के वंशजों ने धार्मिक अंध-विश्वास को बड़ी सीमा में अस्वीकृत किया, परन्तु फिर भी इस धार्मिक निषेध का चित्र-कला के विषय पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। धार्मिक निषेध के कारण मुग़ल कला केवल दर्बार की कला होकर ही जीवित रही। मुसलिम-जन-जीवन में उसका प्रवेश न हो सका। धार्मिक और आध्यात्मिक अनुभूति-प्रधान चित्रों का भी सर्वथा अभाव रहा। इस निषेध का यह भी परिणाम हुआ कि मुग़ल चित्रकला में डिजाइन और पैटर्न मूल-चित्र की अपेक्षा आवश्यकता से अधिक प्रधानता पाने लगे।

मुग़ल शैली के चित्रों का बहुत बड़ा भाग व्यक्तिचित्रों से भरा हुआ है; अनेक चित्रों के विषय ऐसे हैं, जिनमें दर्बार, आखेट, युद्ध और एतिहासिक घटनाओं का चित्रण हुआ है। घरेलू जीवन से सम्बन्धित चित्रों का इस शैली में सर्वथा अभाव है। यद्यपि कुछ

चित्रों के विषय धार्मिक आख्यापिकाओं और पौराणिक कथाओं से सम्बन्धित है, पर चित्रों में आध्यात्मिकता नाममात्र को भी नहीं है। रहस्यमय चित्रों का तो इस शैली में अभाव है। मुग़लों का घरेलू जीवन अन्तःपुर के पर्दे के पीछे छिपा रहने के कारण चित्रित नहीं हो सका। विषय की दृष्टि से मुग़ल चित्रों के ६ स्पष्ट वर्ग बनाए जा सकते हैं :

१—व्यक्ति चित्र।

२—ऐतिहासिक घटनाओं तथा दर्बारी जीवन के चित्र।

३—वृक्षों, फलफूलों और पशु-पक्षियों के चित्र।

४—भारतीय पौराणिक कथाओं के चित्र।

५—अभारतीय कथाओं के चित्र।

व्यक्तिचित्र मुग़ल चित्रों का अधिकांश व्यक्तिचित्रों से भरा हुआ है। इन चित्रों में प्रायः एक व्यक्ति खड़ा हुआ दिखाया गया है। आकृति को बिना किसी रंग की या हल्के धुँधले रंग की पृष्ठभूमि पर गहरे रंग में उभारा गया है। ये व्यक्तिचित्र अधिकांश में अमीरों और सम्राटों के हैं।

मुग़लकालीन रूपकार की प्रतिभा का सच्चा प्रदर्शन इन्हीं व्यक्ति चित्रों के वास्तविक और सूक्ष्म चित्रण में हुआ है। निर्दिष्ट व्यक्ति के स्वभाव-चित्रण में तो अद्भुत कमाल है। उदाहरण के लिए जहाँगीर कालीन व्यक्ति चित्र को देखिए। (चित्र नं० ३६) चित्र

स्वयं सम्राट जहाँगीर का है। सम्राट को हाथ में फूल लिए हुए चित्रित किया गया है। बारीकी और कार्यपटुता की दृष्टि से सिर और चहरे का अंकन अनुपम है। अपने सीमित क्षेत्र में भी चित्रकार ने अपनी कला-कुशलता का परिचय दे दिया है। चित्र स्पष्टतः जहाँगीर के बाद के वर्षों का है। गाल किंचित नीचे की ओर आ गये हैं तथा ठोड़ी कुछ बाहर निकल आई है। मुखमण्डल पर तत्कालीन अशांति की क्षीण रेखाएँ स्पष्ट देखी जा सकती हैं। मुखमण्डल पर चरित्र की पूर्ण छाप है। सम्राट के वस्त्रों में बारीक मलमल या तंजेब का प्रयोग हुआ है। जिसके भीतर से शरीर का अंग दिखाई दे रहा है।

अपने सीमित क्षेत्र में इस प्रकार के व्यक्तिचित्र भारतीय कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

२—ऐतिहासिक घटनाओं तथा दर्बारी जीवन के चित्र मुग़ल चित्रकला में ऐतिहासिक घटनाओं तथा दर्बारी जीवन के चित्रों की एक बड़ी संख्या है। ऐतिहासिक घटनाओं के चित्रों में मुग़ल-इतिहास की असंख्य प्रधान-अप्रधान घटनाओं का चित्रण हुआ है। ये चित्र अधिकांश में सम्राटों के जीवन चरित्र की पुस्तकों के अंश हैं। इनमें सम्राटों के जन्मोत्सव, अंतिम संस्कार, राजपुत्रों की विदाई आदि के अनेक चित्र हैं। दर्बारी जीवन के चित्रों में शाही दर्बार, पर्यटन, आखेट तथा युद्ध सम्बन्धी चित्र आते हैं।

मुग़ल शैली]   [जहाँगीर

चित्र नं० २६

अकबरनामे का 'सलीम का जन्म' नामक चित्र ऐतिहासिक अभिव्यक्ति का सुन्दर उदाहरण है। (चित्र नं० ३७) यह चित्र 'विक्टोरिया एण्ड एलबर्ट म्यूज़ियम' में अब भी सुरक्षित है। चित्र में, राजकुमार के जन्म के समय के घर-बाहर के विभिन्न दृश्य दिखाए गए हैं। जैसा कि भारतीय कला में सर्वत्र है, चित्र में उसी दृश्या को स्थान मिला है, जिसमें दृश्य अधिक से अधिक दिखाई दे। दृश्य कुछ ऊँचाई से देखा गया है। चित्र में स्पष्टतः ४ उपदृश्य हैं—राजमहल के पीछे का थोड़ा सा दृश्य, राजमहल के अन्दर प्रसवालय का दृश्य, प्रसवालय के बाहर भिक्षा-दान और नौबत का दृश्य तथा राजमहल के बाहर नीचे साधु-फक़ीर और याचकों के जमघट का दृश्य। क्रियाशीलता में यह चित्र अनुपम है। चित्र का प्रत्येक व्यक्ति आनन्दोत्सव में कुछ न कुछ भाग ले रहा है—यहाँ तक कि प्रसवालय की छत का मोर भी गर्दन फुलाए आनन्द में मुग्ध है। चित्र भावप्रधान है। प्रत्येक स्थान पर ओज और आवेग उबला पड़ता है, जिससे समस्त घटना मुखरित हो रही है। चित्र की रंग-योजना विशेष रूप से संगतीय है—नारंगी रंग के प्रयोग ने तो चित्र में प्राण से डाल दिए हैं। चित्र का अंकन केशो के हाथ का है तथा चित्रण चित्तर ने किया है।

मुग़ल शैली] [सलीम का जन्म

चित्र नं० ३७

'शाहजहाँ का जनाज़ा' इस प्रकार का अन्य चित्र है। (चित्र नं० ३८) इसका रचना-काल शाहजहाँ के ठीक बाद का है। चित्र 'जयपुर संग्रहालय' में है। चित्र का उदासीनता और भय का सारा वातावरण तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थिति की स्पष्ट सूचना दे रहा है। चित्र में मुग़ल शैली के ह्रास के चिह्न भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। मुद्राओं को निश्चेष्ट और गतिहीन बनाकर चित्रकार ने तत्कालीन अत्यधिक अदब-कायदे की मनोवृत्ति का परिचय दे दिया है। चित्र का दाईं ओर का नीचे का मानव-आकार एक अद्भुत भंग में प्रयुक्त हुआ है—परन्तु अद्भुत होते हुए भी वह चित्र के विषय से विशेष सामञ्जस्य नहीं रखता। एक बात जो चित्र में विशेष खटकती है—वह इस चित्र के मानव आकार हैं जो अनुपात से कहीं अधिक छोटे बनाए गये हैं।

दरबारी जीवन के चित्रों में भी अनेक उल्लेखनीय हैं। एक चित्र में कंधार के सूबेदार अलीमर्दान के आगमन का दृश्य है। चित्र की अग्रभूमि में शाही घोड़ों की पंक्तियाँ खड़ी हैं। मध्य में सूबेदार, जिनके पीछे अनेक अमीर और सहायक खड़े हैं, मुग़ल ढंग का 'मुजरा' अदा कर रहे हैं। सबसे ऊपर शाही नौबतख़ाने का दृश्य है जिसमें ३० से अधिक व्यक्ति भाग ले रहे हैं। चित्र के इन तीनों भागों का चित्रण बड़ा सजीव हुआ है—विशेष रूप से घोड़ों और नौबतखाने का दृश्य बड़ा प्रभावपूर्ण है। आखेट और युद्ध सम्बन्धी चित्रों में सम्राट अपने दर्बारियों या सैनिकों के साथ आखेट अथवा युद्ध करते हुए दिखाए गए हैं। एक आखेट के चित्र में, जो सम्भवतः अब्दुलहसन द्वारा बनाया गया है, एक नारङ्गी रंग के फूलों का पेड़ समस्त पृष्ठभूमि को घेरे हुए है। एक सैनिक पेड़ पर चढ़ रहा है, जिससे पेड़ पर बैठी हुई गिलहरियाँ भाग रही हैं। संयोजन और सजीवता में यह चित्र सुन्दर है। युद्ध के दृश्य मुग़ल कला में बहुत थोड़े हैं। अधिकांश चित्र आखेट-सम्बन्धी हैं।

मुग़ल शैली] [शाहजहाँ का जनाज़ा

चित्र नं० ३७

वृक्षों, फल-फूलों और पशु-पक्षियों के चित्र

वृक्षों, फल-फूलों और पशु-पक्षियों आदि के चित्र मुग़ल चित्रकला के महत्वपूर्ण अंग हैं। ये चित्र अधिकांश में जहाँगीर के समय के हैं तथा इस प्रकार के चित्रों का सबसे प्रसिद्ध चित्रकार मंसूर है। इन चित्रों में किसी वृक्ष, फल, फूल या पक्षी विशेष का चित्रण हुआ है। दूसरे शब्दों में इन चित्रों को प्रकृति-अध्ययन के चित्र कहा जा सकता है। फल-फूलों के चित्रों में अद्‌भुत स्वाभाविकता है। पशु-पक्षिओं के चित्रण में बारीक काम और अत्यधिक सजीवता के दर्शन होते हैं।

भारतीय पौराणिक कथाओं के चित्र

इस प्रकार के चित्रों में रामायण, महाभारत आदि की पौराणिक कथाओं के चित्र आते हैं, जिनमें रज़्मनामा के चित्र प्रधान हैं। इस वर्ग के सभी चित्रों का रचना-काल अकबर या उससे पहले का है। अकबर के पश्चात् के भारतीय कथाओं के चित्र प्रायः नहीं मिलते। रज़्मनामा के सबसे उल्लेखनीय चित्र वे हैं, जिनमें राक्षसों के विचित्र आकारों का बड़ा ही सजीव अंकन हुआ है। इनमें से 'श्वेत अश्व का छटा साहसिक कार्य' और 'घटोत्कच का युद्ध' विशेष उल्लेखनीय हैं। पहला चित्र बड़ा ही कौतूहलपूर्ण है, जिसमें पेड़ के प्रत्येक भाग से पशु और राक्षस उत्पन्न होते हुए दिखाए गए हैं। दूसरे चित्र में राक्षसों की युद्ध-चेष्टाओं का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। मुग़ल शैली की अन्य विशेषताओं के साथ 'रज़्मनामा' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि राक्षसों और अतिमानवों की विचित्र और अद्‌भुत आकृतियों से घटनाओं में एक अद्‌भुत पौराणिकता का समावेश होगया है।

अभारतीय कथाओं के चित्र

ये मुग़ल शैली के आरंभिक चित्र हैं। इनमें शाहनामा अमीरहमज़ा आदि ईरानी विषयों के चित्र आते हैं। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि विषय ईरानी होते हुए भी इन चित्रों की शैली पूर्ण भारतीय है।

१३—मुग़ल शैली
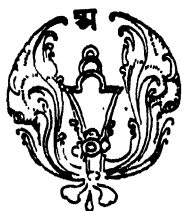
कबर के दर्बार में हिन्दू और ईरानी शैलियों के समन्वय से एक नवीन मुग़ल शैली का आरंभ हुआ; यही शैली बाद में उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होती रही। यह शैली ईरानी शैली से सर्वथा भिन्न थी। भारतवर्ष के कई संग्रहालयों में मुग़ल शैली के चित्रों के साथ-साथ कुछ चित्र ऐसे भी मिलते हैं जो शैली से सर्वथा भिन्न हैं। ये चित्र ईरानी शैली के हैं तथा उन चित्रकारों की रचनाएँ हैं, जो ईरान से आए थे और जिन्होंने भारतीय चित्रकला के सिद्धान्तों के प्रभाव से बाहर रहकर रचनाएँ की थीं।

ईरानी शैली के चित्रों की अपनी बिशेषताएँ हैं। इन विशेषताओं के अध्ययन से हम सहज ही 'मुग़ल शैली' की नवीनता और मौलिकता का अनुमान लगा सकते हैं।

ईरानी शैली की विशेषताएँ

१—**आकृतियों** का चित्रण बिल्कुल रूढ़िगत है। स्त्रियों और पुरुषों का चित्रण आलंकारिक है। स्त्री-पुरुष के चित्रण के लिए ईरानी चित्रकारों ने सरो के वृक्ष और लता को अपना आधार बनाया है।

२—**पृष्ठभूमि** में प्राकृतिक दृश्य हैं। वृक्षों और फूलों के चित्रण में सूक्ष्म निरीक्षण और कार्य-कुशलता स्पष्ट दिखाई देती है।

३—**रंग-योजना** आकर्षक है। चटकीले लाल, सुनहरी तथा नीले रङ्गों का प्रयोग हुआ है।

४—**रेखाएँ** गतिशील हैं। पर उनमें भारतीय प्रवाह नहीं दिखाई देता। घूमती हुई, चक्करदार रेखाएँ एक अजीब आलंकारिक रूप में प्रयुक्त हुई हैं।

५—चहरे अधिकतर दो-आँखों के हैं।

६—प्रकाश-अँधेरे के सिद्धान्त का प्रयोग नहीं हुआ है।

७—अंत में अलंकृत संयोजन, वस्त्रों तथा परदों इत्यादि में सुन्दर डिजाइनों और बेलों की प्रचुरता, पृष्ठभूमि और वस्त्रों पर स्वर्ण का प्रचुर प्रयोग, खाकों की स्पष्टता और बारीक सधी हुई रेखाएँ इस शैली की अन्य विशेताएँ हैं।

मुग़ल शैली की विशेषताएँ

मुग़ल शैली ईरानी प्रभाव से बड़ी सीमा तक स्वतन्त्र है। आलंकारिक रूढ़िवद्ध चित्रण का अभाव है। शैली में यथार्थता और स्वाभाविकता आगई है। ईरानी शैली के विपरीत इसकी अपनी अलग विशेषताएं हैं :

१—मुग़ल शैली की आकृतियों में अधिक यथार्थता और स्वाभाविकता है। मानव आकृतियों के चित्रण में जीवन और स्फूर्ति है। उनके वस्त्र और आभूषण ईरानी शैली से भिन्न हैं। वस्त्रों में शिकन और फहरान है, जो ईरानी चित्रों में नहीं है।

२—ईरानी शैली में पृष्ठभूमि के वृक्षों और प्रकृति का चित्रण आलंकारिक रूप में हुआ है। मुग़ल शैली में, पेड़ आदि के आलंकारिक डिजाइनों के स्थान पर, प्राकृतिक दृश्यों के स्वाभाविक चित्रण का सफल प्रयास दृष्टिगोचर होता है। वृक्ष-लता, पशु-पक्षी, नदी-पहाड़ आदि के चित्रण में सजीवता है। विषय में फ़ारसी वृक्षों, फल-फूलों का स्थान केला, बट, पीपल आदि भारतीय वृक्षों ने ले लिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि पृष्ठभूमि का वातावरण—विषय और शैली दोनों की दृष्टि से—भारतीय है।

३—**रेखाओं** में गति और प्रवाह है। घूमती हुई और चक्करदार ईरानी रेखाओं का अत्यधिक सधापन उनमें नहीं हैं।

४—**आकृतियों** में एक आँख के चहरों की ही अधिकता है, जब कि ईरानी शैली में चहरे अधिकांश में दो-आँखों के हैं।

५—ईरानी शैली के विपरीत **प्रकाश-अंधेरे** के सिद्धान्तों का पालन हुआ है। वस्तुओं में गोलाई और उभार तथा स्थितिजन्य लघुता का समावेश होगया है।

६—मुग़ल शैली के चित्रों के **संयोजन** का अपना अलग ढंग है, जो ईरानी शैली से बिल्कुल भिन्न है। मुग़ल शैली में कथा प्रधान है, व्यक्ति नहीं। अतः आलंकारिकता के स्थान पर घटना ही को प्रधानता दी गई है।

७—मुग़ल चित्रों का **सामान्य विधान** तो बिल्कुल भारतीय है। हमज़ानामा के चित्र चौड़ाई में दो फीट और लम्बाई में इससे भी अधिक हैं और सूती कपड़े पर बनाए गए हैं। भारतीय भित्तचित्रों तथा चित्रपटों की परम्परा वहाँ स्पष्ट दिखाई देती है।

शैली सम्बन्धी विवाद

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुग़ल शैली में भारतीयता का ही अधिक अंश है और उसमें भारतीय रीतियों और परम्पराओं का ही अधिक पालन हुआ है। इसलिए यह न तो 'ईरानी कला की स्थानीय विभिन्नता के कारण उत्पन्न हुई' 'नवीन शैली' मात्र है और न ईरानी तथा भारतीय शैलियों की मिलावट। शैली भारतीय है और कुछ अंश तक 'अप्रत्यत्त' रूप से वह ईरानी कला से प्रभावित है। अब यह सर्वमान्य सा है कि यह कला अपने सच्चे रूप में

भारतीय कला है। यद्यपि इसमें ईरानी शैली के चिह्न अवशेष हैं, तथापि इसका निजी अस्तित्व है, अपनी निजी विशेषताएँ हैं। ईरानी शैली के लक्षणों को ग्रहण करने पर भी यह सर्वथा भारतीय है।

मुग़ल शैली में जिस वातावरण को स्थान मिला है, वह सर्वथा भारतीय है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि इस शैली के द्वारा जनता की भावना को अभिव्यक्ति हुई है। जनता का हृदय तथा जनता का जीवन इसमें कभी चित्रित नहीं हुआ।

चित्रों का विषय हिन्दू हो अथवा मुसलमान, शैली में भारतीयता सर्वत्र बनी हुई है। इस भारतीयता को हम रेखाओं की गोलाई और कोमलता, आकृतियों में गति और स्फूर्ति, हस्तमुद्राओं की सजीवता, प्रकृति के स्वाभाविक यथार्थ चित्रण और भारतीय वस्त्राभूषणों के प्रयोग में पाते हैं।

मुग़ल शैली के कपड़े पर बने हुए चित्रों का सामान्य विधान भी बिल्कुल भारतीय है। इस सम्बन्ध में पर्सीब्राउन का यह कथन कि काग़ज़ की कमी होने के कारण ये चित्र कपड़े पर बनाए गए थे—मान्य नहीं हो सकता। वास्तव में कपड़ों पर बनाए गए चित्रों की परम्परा बहुत प्राचीन है। 'कथा सरितसागर' में 'चित्रपटों' को चिपकाने की परम्परा का उल्लेख है। 'पञ्चतीर्थ' और 'बसन्तविलास' के चित्र इस प्रकार की परम्परा के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। १४वीं शताब्दि के काग़ज़ पर लिखित जैन ग्रन्थ विद्यमान है, जिससे तथाकथित 'काग़ज़ के अभाव' का काफी खण्डन होता है।

मुग़ल आचार्यों के रहते हुए भी मुग़ल काल में भारतीय चित्र-कला की शृङ्खला टूटी नहीं है और जैसा कि विलकिन्सन ने लिखा है—यद्यपि यह शैली आचार्यों की शिक्षा के फलस्वरूप उत्पन्न हुई, पर शिष्यों ने आचार्यों के समान कभी चित्रण नहीं किया।

उन्होंने अपना चिन्तन स्वतन्त्र रखा। उन्होंने भारतीय चित्र-परम्परा को ही ग्रहण किया। देश-काल के प्रभाव से जो अङ्ग ग्राह्य थे, विदेशी होते हुए भी भारतीय चित्रकला में घुल मिल गए। भारतीय आत्मा ने उन्हें आत्मसात कर लिया। शैली की मूल परम्परा भारतीय ही रही।

मुग़ल शैली भारतीय चित्रकला का अविच्छिन्न अङ्ग है—ठीक उसी प्रकार से जैसे कुशान-शिल्प-शैली भारतीय शिल्प-विधान का अपरिहार्य प्रकरण है।

मुग़ल शैली की यह परम्परा जहाँगीर काल तक बराबर विकास पाती रही तथा शाहजहाँ-काल में इस शैली का पतन आरंभ हो गया। इस अवधि में मुग़ल शैली के स्वरूप में अनेक परिवर्तन होते रहे।

जहाँगीर कालीन परिपक्व शैली

अकबर के समय में मुग़ल-शैली का रूप-निर्णय हुआ। जहाँगीर के समय में अभिव्यक्ति के प्रसार का युग आता है। शैली की दृष्टि से यह मुग़ल शैली की पराकाष्ठा का समय है।

जहाँगीर को पशु-पक्षी, फूल-पत्ती के चित्र बनवाने की विशेष अभिरुचि रही। प्रकृति के विभिन्न रूपों का इतना सफल, स्वाभाविक और यथार्थ-चित्रण मुग़ल काल में अन्यत्र नहीं दिखाई पड़ता। इस क्षेत्र में मंसूर अद्वितीय है। उसके चित्रों में यथार्थता के साथ-साथ एक सजीवता है। रेखाएँ बारीक और कोमल हैं तथा रंग-विधान सूक्ष्म है। प्रत्येक वस्तु में चित्रकार के अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय मिलता है।

आखेट और युद्ध सम्बन्धी चित्र सजीव और गतिपूर्ण हैं। दर्बारी चित्रों में गति की कमी है। इस जड़ता का कारण

तत्कालीन अनुशासन है। तूलिका को बँधकर चलना पड़ा है—चित्रकार वहाँ अपनी तूलिका का व्यवहार करने में स्वतन्त्र नहीं है।

इस काल में हाशिये की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। कहना न होगा, ये हाशिये स्वयं अपने में इतने पूर्ण हैं कि मूल चित्रों का वैभव उनके सामने फीका लगता है। यद्यपि हाशिये को सजाने की प्रथा पहले भी थी, पर जहाँगीर के समय में इस दिशा में विशेष उन्नति हुई। इन हाशियों में फलों, लताओं, बेलों और पौदों का आलंकारिक प्रयोग किया गया है। बीच-बीच में कहीं-कहीं तितलियाँ, चिड़ियाँ तथा दूसरे प्रकार के पशु-पक्षी डाल दिए गए हैं। इसका ध्यान रखा गया है, कि इन हाशियों का विषय यथा-संभव चित्रों से मेल रखता हुआ हो। हाशिए की रंग-योजना भी केन्द्रीय रंग-योजना के अनुकूल रहती है। हाशियों में प्रयुक्त इन पेड़-पौदों के आकार कहीं-कहीं इतने आलंकारिक हैं कि कठिनाई से पहिचाने जाते हैं। हाशियों में प्रायः सोने की राख-का छिड़काव किया गया है।

जहाँगीर कालीन शैली में घनत्व और उभार का समावेश बड़ी मात्रा में हो गया है। प्रकाश-छाया और स्थितिजन्यलघुता के नियमों के प्रभाव भी देखे जा सकते हैं।

शाहजहाँ कालीन शैली

जहाँगीर काल के जिस दरबारी अदब-कायदे की चर्चा ऊपर हुई है, वह शाहजहाँ के समय में और भी बढ़ जाता है। इससे चित्रों में कृत्रिमता और जड़ता आ गई है। यद्यपि हस्त-मुद्राओं का बड़ा ही यथार्थ अंकन हुआ है, पर उनमें जीवन का अभाव है। चित्र में कुछ ऐसा नहीं जिससे वह बोल उठे। विचित्तर, होनहार और हाशिम जैसे चित्रकार इस काल में बहुत कम हैं।

हाशिये की चित्रणकला में इस काल में और भी उन्नति होती है। पर ये हाशिये मूलचित्र से इतने उभर कर आए हैं कि इनसे चित्र की कलाहीनता और भी स्पष्ट हो जाती है।

चित्रों में अत्यधिक वास्तविकता आ गई है। उनमें बड़ा ही बारीक काम है और व्यौरों का बड़ा ही सूक्ष्म अंकन हुआ है।

रंग-विधान में चटक-मटक अधिक है। चटकीले रंगों का प्रयोग हुआ है।

सामग्री और टेकनिक मुग़ल शैली में चित्र-सामग्री के सम्बन्ध में विशेष ध्यान दिया गया है। सामग्री अधिकांश में हस्त-निर्मित होती थी। मुग़ल काल में भारतवर्ष में कई प्रकार के काग़ज़, रेशमी, दौलताबादी, कार्डी, हिन्दी, स्यालकोटी मुग़ली आदि प्रसिद्ध थे। 'हिन्दी' और 'स्यालकोटी' का अधिक प्रचार था। 'मुग़ली' काग़ज़ अधिक अच्छा समझा जाता था। इसके अतिरिक्त दो विदेशी काग़ज़ ईरानी और इस्पहानी प्रचलित थे। काग़ज़ अधिकतर बाँस, जूट, कपास तथा सन से तैयार किए जाते थे। सभी प्रकार के काग़ज़ों का रंग सफेद न होकर कुछ मटमैला होता था। ब्रुश विभिन्न जीव-जन्तुओं जैसे बकरी, गिलहरी, ऊँट के बालों से बनाए जाते थे। गिलहरी के बच्चे की पूँछ के नीचे के भाग के कोमल बालों से बने हुए ब्रुश अधिक बारीक होते थे। लंका में अत्यन्त बारीक काम के लिए एक घास विशेष के ब्रुश प्रचलित थे। रंग चित्रकार स्वयं अपनी व्यक्तिगत विधियों से तैयार करते थे। रंग प्रायः फूल पत्तियों तथा खनिज पदार्थों से बनाए जाते थे। पीला रंग, मुल्तानी मिट्टी से या ढाक के फूलों से; काला, सरसों के तेल के दीपक में कपूर बत्ती को जलाकर; तथा

गह्रा बैंजनी हारमुजी तथा काले को मिलाकर प्राप्त किया जाता था। अक्सी काग़ज़ हिरन की खाल से प्राप्त किया जाता था।

दो या अधिक काग़ज़ों को परस्पर चिपकाकर मोटा किया जाता था। पुस्तक-चित्र प्रायः इकहरे काग़ज़ पर बनाये जाते थे। काग़ज़ का धरातल घोटकर चिकना कर लिया जाता था। इसके पश्चात् काम आरम्भ होता था। मुग़ल अंकन पद्धति राजपूत शैली के ही समान थी, जो स्वयं छोटे आकार में अजन्ता कालीन टेकनिक का ही एक रूप थी। पहली सीमा रेखाएँ गेरू से तथा अन्तिम काले रंग से बनाईं जाती थीं। ट्रेसिंग द्वारा चित्राङ्कन उस समय की कला का प्रधान अंग था। अक्स किये हुए अनेक प्रकार के नमूने प्रायः चित्रकार संचित रखते थे। रंग प्रायः पानी में ही घोले जाते थे साथ में गुड़ गोंद तथा अंडी का पानी मिलाया जाता था जिससे रंग में अधिक स्थायित्व आ जाता था। ज़री शैली में रेशमी वस्त्रों तथा आभूषणों के सजाने में सच्चे मोती और पत्थरों का प्रयोग किया जाता था। अबीना शैली में केवल पानी द्वारा सीमा रेखाएँ अंकित की जाती थीं जिनके सूखे हुए चिह्नों के आधार पर आगे का कार्य आरम्भ होता था। काश्मीरी चित्रकार पानी को पूर्ण रूप से सुखाकर बड़ा सुन्दर 'बल' प्राप्त करते थे, जिससे सम्पूर्ण चित्र में अत्यन्त कोमल बलों का समावेश हो जाता था।

सूती कपड़े पर चित्राङ्कन करने की प्राचीन परम्परा भी प्रचलित रही। तैल-चित्रों का यद्यपि इस समय प्रचार हो चला था, पर वे कम पसन्द किये जाते थे। दक्षिणी भारत में इस समय के तैल-चित्र अब भी प्राप्त हैं।

सामग्री-चयन तथा उन्नत टेकनिक के अनुशीलन में मुग़ल शैली भारतीय चित्रकला में विशेष महत्व रखती है।

१४–राजपूत चित्रकला
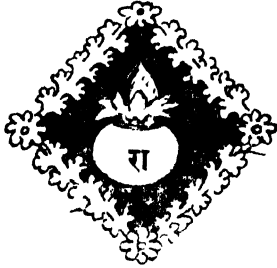
जपूत चित्रकला का आरम्भ एक लम्बी अवधि लिए चलता है। इस चित्रकला का सम्बन्ध मध्यकालीन मुलिपि शैली से है। अजंता शैली के पतन के पश्चात् प्रतिकूल राजनीतिक परिस्थितियों में भारतीय कला अपना प्राचीन गौरव खो बैठी। बाद की जैन पुस्तक-चित्र-शैलो में पतन के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं। यह शैली बहुत समय तक अपने इसी रूप में चलती रही। पर १५वीं शताब्दि के आरम्भ होते-होते धर्म-आन्दोलन से भारतवर्ष में एक बार फिर नवजीवन की लहर दौड़ गई। कबीर ने निर्गुण एकेश्वरवाद की दीक्षा दी, पर वह इतना अस्पष्ट और रूखा था कि वल्लभ और रामानुज के लोकरंजक और लोकरक्षक सगुण रूप शीघ्र सामने आए। भारतीय चित्रकार ने धर्म से एक बार फिर प्रेरणा ग्रहण की। नवीन हिन्दू धर्म से प्रेरणा पाकर चित्रकार की तूलिका एक बार फिर सशक्त हो उठी और उपर्युक्त निर्जीव शैली का स्थान एक ऐसी जीवित शैली ने ले लिया जो राजपूत शैली कहलाई।

राजपूत शैली एक नवीन शैली के रूप में प्रकट नहीं हुई वरन् वह पहले से ही चली आरही परम्परागत शैली का ही उन्नत और परिवर्द्धित संस्करण थी।

धार्मिक प्रेरणा हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के साथ-साथ लोगों के विश्वास और उनके धार्मिक जीवन में बड़ा परिवर्तन होगया। धर्म का पौराणिक स्वरूप, उसके धार्मिक उत्सव,

मंदिरों का नाटकीय वातावरण, जाति-प्रथा तथा नवीन धर्म के आधार भगवान राम और कृष्ण की रंजनकारी रूप से व्यक्ति की सौन्दर्यभावना की बड़ी प्रेरणा मिली। साहित्य, वास्तु, शिल्प, संगीत आदि कलाओं की उन्नति के चिह्न फिर दिखाई देने लगे। मंदिरों के निर्माण ने वास्तुकला को पर्याप्त उन्नति प्रदान की। मूर्ति निर्माण से शिल्पकला का उच्चकोटि का विकास हुआ। बौद्धों के सामान्य रूप अंकन के लिए चित्रकला का माध्यम ठीक था परन्तु नवीन हिन्दू धर्म में आराध्य विशेष के 'यथार्थ' रूप अंकन की अपेक्षा थी। इसके फलस्वरूप घनत्वमूलक शिल्प-कला का विकास अधिक हुआ और चित्रकला का अपेक्षाकृत कम। फिर भी परम्परागत रूढ़ियों ने चित्रकला के विकास में बड़ा योग दिया। भगवान शिव, राम और कृष्ण तथा उनकी लीलाओं से सम्बन्धित चित्र बनाए जाने लगे। कथा काव्य की उन्नति के साथ उसको चित्रित करने की रुचि बढ़ी। संगीत और तत्कालीन हिन्दी रीति-काव्य के आधार पर रागमाला तथा ऋतु-सम्बन्धी चित्र बने। महात्माओं के व्यक्तिचित्र भी बनाए गए। इस प्रकार नव धर्म से प्रेरणा पाकर चित्रकला का भी क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत हो गया।

राजपूत चित्रकला का विकास, उत्थान-पतन

राजपूत-कला का इतिहास राजपूतों के इतिहास के समान ही बिखरा हुआ है और १६वीं शताब्दि के मध्य से लेकर १९वीं शताब्दि के अंत तक फैला हुआ है। राजपूत चित्रकला का इससे पहले रूप क्या था—यह व्यावहारिक रूप में अज्ञात है; फिर भी उसे प्राचीन पुस्तक शैलियों से सम्बन्धित किया जा सकता है। अकबर के राज्य-काल से पहले के राजपूत कला के उदाहरण थोड़े हैं। चित्रकला सम्बन्धी ऐतिहासिक विवरण मिलते हैं। आठवीं शताब्दि के आरम्भिक वर्षों में जब मुहम्मद कासिम सिंध पर चढ़ाई कर रहा था एक हिन्दू सर्दार ने उसके तथा उसके सर्दारों के व्यक्तिचित्र

खींचने की आज्ञा माँगी थी, ऐसा एक तत्कालीन लेखक का उल्लेख है। यह उल्लेख साधारण होते हुए भी महत्वपूर्ण है। इससे दो निष्कर्ष निकलते हैं। पहला यह कि उस समय जनता में कला के प्रति विशेष रुचि थी और व्यक्ति-चित्रण चित्रकला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान लिए हुए था। दूसरा यह कि जिस समय का यह विवरण है, उस समय देश में राजपूतों का प्रभुत्व था। इसके बाद बहुत काल तक जयपुर 'राजपूत चित्रकला' का केन्द्र बना रहा। दिल्ली, आगरा, लाहौर आदि की स्थानीय मुग़ल शैलियों में राजपूत कला के प्रभाव स्पष्ट हैं और यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अधिकांश मुग़ल शैली की रचनाएँ राजपूत शैली के उन चित्रकारों की रचनाएँ हैं, जो मुग़ल साम्राज्य की स्थापना होने के बाद मुग़ल दर्बारों में कार्य करने लगे। १८ वीं शताब्दि के मध्य में जयपुर की राजपूत चित्रकला का पतन आरम्भ हो गया। औरंगजेब के अनुदार शासन-काल में जब चित्रकारों का जमाव कम हुआ और चित्रशालाएँ समाप्त हो गईं, तब चित्रकार मुग़ल आश्रय को छोड़कर इधर-उधर चले गए। सम्भवतः ये ही कलाकार काँगड़ा, टेहरी गढ़वाल, गुलेर आदि रियासतों में बस गए और वहाँ के चित्रकारों का सहयोग पाकर प्राचीन चित्र-परम्परा का नवीन रूप में विकास किया। कटोच राजाओं के काल में काँगड़ा में चित्रकला की विशेष उन्नति हुई। संसारचन्द ने अनेक चित्रकारों को राज्याश्रय प्रदान किया। १८ वीं शताब्दि के अन्तिम चरण में काँगड़ा की चित्रकला अपने पूर्ण उत्कर्ष पर थी।

१६ वीं शताब्दी के समाप्त होते-होते कांगड़ा की चित्रकला में पतन के चिह्न दिखाई देने लगे। सभ्यता के विकास के साथ-साथ घाटियों की एकान्त रमणीयता जाती रही। परवर्ती युवक चित्रकार अधिक लाभ के कारण सरकारी दफ्तरों में नौकरी करने लगे।

परन्तु इस महान् चित्रकला और इसके चित्रकारों का वास्तविक अन्त 'धर्मशाला' के भूकम्प के साथ हुआ जिसके कारण काँगड़ा के अधिकांश जिले पूर्णतः नष्ट हो गये। कांगड़ा की चित्रकला के अन्त के साथ राजपूत कला का भी अन्त हो गया। यह अन्त भारतीय परम्परागत अन्तिम शैली का भी अन्त कहा जा सकता है।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट है कि इस शैली के उत्थान-पतन का इतिहास, मुग़ल शैली के उत्थान-पतन से सम्बन्ध रखता है।

राजपूत अथवा हिन्दू-चित्रकला इस शैली के चित्र काश्मीर, पञ्जाब, राजस्थान, बुन्देलखण्ड आदि राजपूत रियासतों में ही मिलते हैं। इसी से डा० कुमारस्वामी ने इसे 'राजपूत शैली' की संज्ञा दी है। पर केवल राजपूत राजाओं के आश्रय के कारण इस का नाम राजपूत कला रखना ठीक नहीं और मेहता के शब्दों में इसे 'हिन्दू कला' के नाम से सम्बोधित करना अधिक उचित है। धर्म के आधार पर बौद्ध, जैन तथा हिन्दू आदि विभाग करना अधिक सुविधापूर्ण भले ही हो, परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से वे ठीक नहीं कहे जा सकते।

राजपूत चित्रकला की ही एक शाखा १७ वीं शताब्दि में काँगड़ा शैली के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसमें तथा प्राचीन राजस्थानी शैली में, जिसका केन्द्र जयपुर रहा, पर्याप्त विभिन्नता है। राजस्थानी शैली को जयपुर शैली भी कहा जाता है पर इस तरह राजपूत चित्रकला की 'राजस्थानी शैली' का क्षेत्र बहुत कम हो जाता है।

आगे हम कांगड़ा और राजस्थानी उपशैलियों का वर्णन राजपूत चित्रकला के अन्तर्गत करेंगे।

१५-राजपूत चित्रकला के चित्र
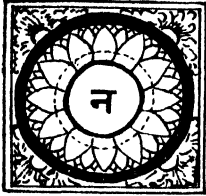
व-धर्म से प्रेरणा पाकर राजपूत चित्रकला का क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत हो गया था, यह बताया जा चुका है। भगवान् कृष्ण की लीलाओं तथा पौराणिक आख्यायिकाओं के चित्र, नित्य के घरेलू जीवन के चित्र, रागमाला और ऋतु सम्बन्धी चित्र, व्यक्तिचित्र आदि सभी दिशाओं में चित्रकला का बहुमुखी विकास हुआ। विषय की दृष्टि से इन चित्रों के निम्न विभाग हो सकते हैं।

(१) कृष्ण-लीलाओं तथा पौराणिक घटनाओं के चित्र।
(२) घरेलू जीवन के चित्र।
(३) रागमाला और ऋतु-सम्बन्धी चित्र।
(४) व्यक्तिचित्र।

कृष्ण-लीलाओं तथा पौराणिक घटनाओं के चित्र।

नवीन हिन्दू धर्म मूल रूप में पौराणिक था। कथाकाव्य को चित्रित करने की परम्परा प्राचीन काल से चली आरही थी। जिस प्रकार बौद्ध कलाकारों के चित्रों में बुद्ध के जीवन-मरण और उनके पूर्व अवतारों की घटनाओं और कथाओं का चित्रण हुआ, उसी प्रकार इस काल के चित्रों में नवीन पौराणिक धर्म के आधार कृष्ण, राम, शिव, पार्वती के नाना रूपों का उद्घाटन हुआ।

नवीन हिन्दू-धर्म के आधार कृष्ण, राम, शिव और शक्ति में से कृष्ण के रूप ने ही जनता को अधिक आकर्षित किया। क्योंकि, कृष्ण

भगवान होते हुए भी जनता के बाल-सखा थे, अमानवीय होते हुए भी उनका जीवन साधारण हिन्दू का सा था और वे भगवान होते हुए भी मानव थे। कृष्ण-लीला का विस्तृत क्षेत्र और उसकी सामान्य-जन-जीवन से सामञ्जस्य रखती हुई परिस्थितियाँ चित्रों की स्वाभाविक प्रेरणा में विशेष सहायक हुईं। बुद्ध के जीवन की असंख्य घटनाओं के समान ही कृष्ण के जीवन की विविध बाल-लीलाएँ, उनके गोप जीवन की अनेक बाह्य और अंतरदशाएँ, उनके युवा जीवन के स्वाभाविक क्रीड़ा-कलाप चित्रों का आधार बने।

कृष्ण-जीवन के चित्रों में 'चन्द्रमा को माँगते हुए' * मोलाराम के 'गोवर्धन-धारण' और 'रासमण्डल' उच्चकोटि के चित्रों में हैं।

'चन्द्रमा को माँगते हुए' चित्र में बालक कृष्ण चन्द्रमा को लेने के लिए हठ कर रहा है। आँगन में बैठी हुई यशोदा उसे गोद में पकड़े हुए है। अन्य गोपियाँ वात्सल्य, चिन्ता और आशा-युक्त भावों से बालक की ओर देख रही हैं। परन्तु बालक कृष्ण थाली के जल में पड़ते हुए चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब से संतुष्ट नहीं होता—चित्र का संयोजन संतुलित तथा रंग-विधान नितान्त उपयुक्त है।

'गोवर्धनधारण' चित्र का संयोजन कुछ संश्लिष्ट है। महा-वृष्टि से व्रजवासियों को त्राण देने के लिए, अपने बाएँ हाथ की कनिष्ठ उँगली पर गोवर्धन पर्वत को सम्हाले हुए, श्रीकृष्ण चित्र के मध्य में खड़े हैं। इधर-उधर खड़ी हुई गाय और गोपियों का चित्रण विविध भावों के साथ किया गया है। बाँई ओर स्वर्ग का दृश्य है, जिसे घुमड़ते हुए बादलों की पंक्ति से अलग कर दिया गया है। इन्द्र कृष्ण के सम्मुख हाथ जोड़ कर क्षमा प्रार्थना कर रहा

* पोथीखाना जयपुर।

है। सम्पूर्ण देवता भगवान् कृष्ण के आदर के लिए अपने अपने बाहनों पर चढ़ कर आ रहे हैं। गणेश तथा इन्द्र के वाहन चूहे और ऐरावत का चित्रण विशेष रूप से मनोरञ्जक हैं। अपनी माँ के दूध के लिए लपकते हुए बछड़ों का चित्रण बड़ा मनोरम हुआ है यह चित्र राजस्थानी शैली का सर्वोत्कृष्ट चित्र है।

'मोलाराम का 'रासमण्डल' राजस्थानी कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। केन्द्र में स्थित प्रकृति और पुरुष के प्रतीक राधा और कृष्ण नृत्य का नेतृत्व कर रहे हैं। उनके चारों ओर गोपियों का समूह तीन सकेन्द्रिक बृतों में विभाजित है। सम्पूर्ण चित्र में एक अपूर्व मोहिनी है। कोई दो आकृतियाँ और उनके अंग समान नहीं हैं आभूषणों, केशों और वस्त्रों के फहरान में सर्वत्र विभिन्नता है। चित्र में एक ही लय है, एक ही सङ्गीत है। संयोजन में दृश्य कुछ ऊँचाई से देखा गया है। राधाकृष्ण के युग्म में एक अपूर्व दिव्यता है। कृष्ण और गोपियों के रूपक में परमब्रह्म और उन्हीं से विकसित जीवात्माओं का यह रास अपनी दिव्यता में निश्चय ही महान है।

पौराणिक घटनाओं के चित्रों में 'अयोध्या को छोड़ते हुए' चित्र में खिन्नता और उदासी की एक क्षीण रेखा विद्यमान है। रथवान सुमन्त रथ को बढ़ाते हुए पीछे मुड़-मुड़ कर राजभवन और अयोध्यावासियों को देख रहे हैं, जो मूक, उदास और खिन्न से खड़े हैं। पृष्ठभूमि में एक ओर भोंकते हुए कुत्ते अपशकुन की सूचना दे रहे हैं। सारा वातावरण मूक करुणा से ओतप्रोत है। 'काली' में असुर-संहार के भीभत्स दृश्य का अंकन है। यहाँ यह बात देखने की है कि भारतीय कला में 'कुरूप से कुरूप' भी रस-दृष्टि से उपेक्षणीय नहीं रहा। 'लंका की चढ़ाई' में बन्दरों और भालुओं की स्वाभाविक भीड़ अत्यन्त आकर्षित रूप में चित्रित की गई है।

घरेलू जीवन के चित्र इस प्रकार के चित्रों का विषय मनुष्य के घरेलू धार्मिक और सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखता है। घर, खेत, खलिहान, बाजार, मंदिर, पनघट जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों से चित्रों के विषय चुने गए हैं। एक साधारण भारतीय के घरेलू, धार्मिक और सामाजिक आचार-विचारों का जैसा स्वाभाविक चित्रण राजपूत शैली के चित्रकारों ने किया है, वैसा किसी अन्य शैली के चित्रकारों ने नहीं किया।

एक चित्र में सड़क के किनारे का सुन्दर दृश्य है। बरगद के वृक्ष के नीचे के कुँए के निकट कुछ यात्री विश्राम कर रहे हैं। कोई तकिया लगाए लेटा है, कोई चिलम भर रहा है और कोई हुक्का गुड़गुड़ा रहा है। तत्कालीन, सरल और विश्रामप्रिय जीवन का यह मनोरम उद्घाटन है। कुँए पर एक स्त्री एक सिपाही को पानी पिला रही है। सिपाही की आँखों में कृतज्ञता है और स्त्री के मुखमण्डल पर दया का भाव स्पष्ट रूप से अङ्कित हैं। घरेलू जीवन के चित्रों में 'आँधी में' चित्र बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। (चित्र नं० ३६) चित्र में एक युवती आँधी आ जाने के कारण अपने घर में शीघ्रता से घुसने का प्रयत्न कर रही है। हवा के वेग से उसका दुपट्टा सिर से खिसक कर उड़ा जा रहा है, जिसको वह अपने सीधे हाथ से बड़ी कठिनता से पकड़ पा रही है। चित्र 'कलाभवन बनारस' में सुरक्षित है। यही चित्र अधिक पूर्ण और समाप्त अवस्था में 'लखनऊ आर्ट स्कूल' में है, जिसमें हवा के वेग से कमरे के

पहाड़ी शैली] [आँधी में

चित्र नं० ३६

किवाड़ भी खड़खड़ाते दिखाए गए हैं। 'कलाभवन' के चित्र में रेखाएँ अधिक कोमल हैं जैसा कि 'आर्ट स्कूल' की प्रति में नहीं है।

घरेलू जीवन के चित्रों में जयपुर शैली का दीपक ले जाते हुए स्त्री का चित्र बड़ा सजीव है। (चित्र नं० ४०) चित्र में एक नवयुवती को दाँये हाथ में दीपक थामे तथा बाएँ हाथ से अपने अञ्चल से उसकी ओट कर के ले जाते हुए चित्रित किया गया है। चित्र में दीपक की ओट करने का भाव तथा उसका सावधानी पूर्वक आगे की ओर बढ़ना कि कहीं दीपक बुझ न जाय—विशेष दर्शनीय हैं।

रागमाला और ऋतु-सम्बन्धी चित्र

रागमाला और ऋतु-सम्बन्धी चित्रों में राग और ऋतु से सम्बन्धित समय और ऋतु और मानव व्यापारों का चित्रण हुआ है। योरप में भी ऋतु-चित्रों की रचना हुई है पर उनमें ऋतुओं के वाह्य भौतिक प्रभावों का ही अंकन होता है। व्यक्तियों की मानसिक अवस्था का प्रायः दिग्दर्शन नहीं कराया जाता। राजपूत चित्रकला में ऋतुओं और रागों से सम्बन्धित प्रेम-लीलाओं का भी चित्रण हुआ है।

ऋतु और रागमाला सम्बन्धी चित्रों में 'ब्रिटिश म्यूजियम लंदन' के रागिनी भैरवी, 'गवर्नमेन्ट आर्ट गैलरी कलकत्ता' की रागिनी सारङ्गी का विधान सुन्दर है।

राजस्थानी—जयपुर

चित्र नं० ४०

व्यक्तिचित्र मुग़ल शैली में व्यक्तिचित्रों का बड़ा प्रचार था। यह समय ही व्यक्तिचित्रों का था। अतः राजपूत चित्रकला में व्यक्ति-चित्रों की रचना स्वाभाविक थी।

राजपूत शैली के व्यक्ति-चित्र अधिकांश में राजा महाराजाओं, सर्दारों तथा साधु-फ़क़ीरों के हैं। मुग़ल शैली के व्यक्तिचित्रों के विरुद्ध राजपूत शैली के व्यक्तिचित्रों में राजा और सर्दारों को हुक्का पीते हुए अंकित किया गया है।

जयपुर शैली में बने हुए चित्रों में मुग़ल शैली की सी सजीवता नहीं है। यह अन्तर मुग़ल शैली के व्यक्तिचित्र 'जहाँगीर' से, जयपुर शैली के 'अकबर' चित्र की तुलना करने से सहज ही स्पष्ट हो जायगा। जयपुर शैली के व्यक्तिचित्रों की रेखाएँ कठोर हैं। स्वाभाविकता और यथार्थता में भी वे मुग़ल-शैली के व्यक्ति-चित्रों को नहीं पहुँचते। फिर भी, इनके बारीक रेखाओं में खींचे गए स्पष्ट खाके पर्याप्त कलात्मक हैं। पहाड़ी शैली के व्यक्तिचित्र जयपुर शैली के चित्रों से अधिक उत्कृष्ट बन पड़े हैं। पहाड़ी शैली के व्यक्तिचित्रों में अत्यधिक यथार्थता है तथा स्वाभाविता और माधुर्य में वह मुग़ल शैली से भी आगे हैं।

साधु और फ़क़ीरों के व्यक्तिचित्रों में बूँदी शैली का (चित्र नं० ४१) उल्लेखनीय है। चित्र की सामान्य विशेषताओं के साथ-साथ साधु के मुख के चित्रण में साधुता और विद्वता का बड़ा ही सुन्दर आभास दे दिया गया है।

राजस्थानी— बूँदी]   [चित्र नं० ४१

राजपूत शैली के व्यक्तिचित्रों में जयपुर शैली का 'अकबर' राजपूत शैली के व्यक्तिचित्रों की शैली को समझने में बड़ा उपयोगी है। (चित्र नं० ४२) विषय यद्यपि मुग़ल है, पर रेखाओं के प्रवाह में अत्यन्त भारतीयता आगई है।

अन्य व्यक्ति चित्रों में 'राजा प्रकाशचन्द' 'महाराज प्रतापसिंह' के व्यक्तिचित्र उल्लेखनीय हैं।

राजस्थानी—जयपुर] [अकबर

चित्र न० ४२

१६—राजपूत शैली

राजपूत शैली और मध्य कालीन पुस्तक शैलियाँ राजपूत शैली मध्यकालीन जैन 'पुस्तक शैली' का नवीन और विकसित रूप थी। अतः कुछ विशेषताएँ राजपूत और जैन शैलियों के चित्रों में समान रूप से मिल जाती हैं।

समानताएँ १—राजपूत शैली के प्रारम्भिक चित्रों में वही भाव शून्यता और वाह्य प्रकृति का वही रूढ़िबद्ध और आलंकारिक चित्रण विद्यमान है, जो तत्कालीन 'पुस्तक शैली' की तात्विक विशेषता है।

२—विषय की दृष्टि से भी दोनों में समानता हैं। दोनों में रागमाला, ऋतु-चित्र तथा राधाकृष्ण-सम्बन्धी चित्र बने हैं।

विभिन्नताएँ राजपूत शैली में बहुत ही नवीनताएँ हैं जो 'मध्य-कालीन' पुस्तक-शैलियों से बिलकुल अलग कर देती है।

१—विषय की दृष्टि से राजपूत शैली में व्यक्तिचित्रों की अधिकता है और जैन चित्रों का अभाव है।

२—शैली की दृष्टि से अन्तर अधिक स्पष्ट है—

(क) 'पुस्तक शैली' का रंग-विधान राजपूतशैली के चित्रों से भिन्न है। राजपूत शैली में लाल-पीले रंगों के स्थान पर अधिक चटकीले रंगों का प्रयोग हुआ है।

(ख) 'राजपूत शैली' पुस्तक शैली से अधिक यथार्थ है। राजपूत शैली के चित्रों में स्वाभाविकता आ गई है;

रूढ़ियों के परित्याग की चेष्टा दृष्टिगोचर होती है।

(ग) आकृति-चित्रण में 'पुस्तक-शैली' के चित्रों की मुखाकृति सवाचश्म है। राजपूत चित्रों में आकृतियाँ सवाचश्म न रहकर एक चश्म रह गई है।

(घ) दोनों शैलियों के सामान्य विधान में काफी अन्तर है। 'पुस्तक शैली' के चित्र मुख्यतया ग्रन्थों में हैं और इकहरे कागज पर बने हैं। राजपूत शैली के चित्र अधिकांश में अलग-अलग हैं।

(ङ) राजपूत शैली में कतिपय मुगल प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। 'पुस्तक-शैली' में उनका स्पर्श भी नहीं है।

इसलिए यही कहना अधिक उचित है कि 'पुस्तक-शैली' अपनी उन्नत अवस्था में कुछ नवीन विशेषताओं और प्रभावों के साथ राजपूत शैली कहलाई।

राजपूत शैली और अजन्ता शैली

यद्यपि राजपूत शैली का विकास 'पुस्तक-शैली' से हुआ परन्तु स्वयं 'पुस्तक शैली' अजन्ता की पतनोन्मुख शैली थी। अतः राजपूत शैली का सम्बन्ध अजन्ता शैली से भी है। राजपूत शैली का ऐतिहासिक विकास यद्यपि 'पुस्तक शैली' से ही हुआ है; परन्तु इस विकास में अजन्ता शैली की स्पष्ट प्रेरणा है। वह अजन्ता शैली की वंशज है। ऊपर से दोनों शैलियों में चाहे समानता न दिखाई दे पर सूक्ष्म विवेचन करने पर यह निश्चय हो जाता है कि इस शैली में 'अजन्ता-शैली' एक बार फिर जी उठी है।

१—दोनों की प्रेरणा का प्रधान श्रोत धर्म ही है। जिस प्रकार बौद्ध-धर्म से बौद्ध चित्रशैली को एक विस्तृत प्रेरणा मिली है उसी प्रकार नव पौराणिक हिन्दू धर्म से राजपूत शैली का उन्नत विकास

हुआ है। बुद्ध और उनकी कथाओं का स्थान राम-कृष्ण, शिव-शक्ति और उनकी पौराणिक कथाओं ने ले लिया है। दोनों ही शैली के चित्रकारों के चित्रों की रचना धार्मिक जोश के कारण हुई है।

२—अजन्ता और राजपूत दोनों ही शैलियों का विकास एक प्राचीन-कला-परम्परा से हुआ है :—

दोनों की **रेखाओं** के गति और प्रवाह, समान रूप से उच्च कोटि के हैं। यद्यपि राजस्थानी शैली के चित्रों की रेखाओं में कुछ कठोरता है पर प्रवाह और अटूटता में वे अजन्ता की रेखाओं के ही समकक्ष हैं।

भाव-अनुभावों के चित्रण में राजपूत शैली के चित्रों में अजन्ता के समान ही सजीवता है। अन्तर केवल इतना है कि बुद्ध की 'शान्ति' का स्थान लीलानायक कृष्ण के 'माधुर्य' ने ले लिया है।

राजपूत शैली के **रंग विधान** में अवश्य कुछ नवीनता है। वह तत्कालीन मुग़ल शैली से प्रभावित है उसमें मुग़ल शैली की चमक-दमक का समावेश हो गया है।

आकृति-चित्रण में कुछ यथार्थता आ गई है। 'सामान्य' आकृतियों का 'आलंकारिक सौंदर्य' राजपूत कला में कम देखने को मिलता है।

दृश्य संयोजन में दोनों शैलियों का, काल्पनिक है अर्थात् एक ही चित्र में अनेक समयों और स्थानों की योजना हुई है।

दोनों शैलियों की **टेकनिक** में जो अन्तर हैं वह ऊपरी हैं, वास्तविक नहीं। परिस्थितिवश बौद्ध शैली के चित्रकारों को विस्तृत

गुफाओं की लम्बी-चौड़ी दीवारें मिल गई थीं। पर राजपूत चित्रकारों के पास छोटे-छोटे मन्दिर थे, जिनकी दीवारों में खुदाई के काम की अधिकता होने के कारण समतल धरातल का अभाव था। इसलिए उसे अजन्ता के कलाकार के विपरीत छोटा माध्यम ग्रहण करना पड़ा। भित्तिचित्रों का स्थान छोटे-छोटे चित्रों ने ले लिया। परन्तु छोटे पैमाने के इन चित्रों में भी प्राचीन अजन्ता की भित्ति-टेकनिक का ही अनुसरण किया गया। राजपूत शैली में ऐसी रचनाएँ प्राप्त हैं जो अजन्ता के समाम ही बड़े पैमाने पर बनाई गई है। उत्तरी भारत के राजमहलों के कई भित्तिचित्र इस बात के साक्षी रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

राजपूत और मुग़ल-शैलियाँ मुग़ल और राजस्थानी दोनों शैलियाँ देश में समानान्तर रूप से चलती रहीं जिससे दोनों शैलियों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ा। पर दोनों ने अपना पृथक अस्तित्व बनाए रखा। भारतीय कला ईरानी प्रभावों से मुग़ल कला बनी थी। यद्यपि मुग़ल दर्बारों में हिन्दू चित्रकार ही काम करते थे, परंतु इन दर्बारी हिन्दू-कलाकारों के अतिरिक्त ऐसे कलाकार भी थे जो दर्बारी कला के प्रभाव से दूर रह कर अपना स्वतंत्र विकास कर रहे थे। ये चित्र-कार भारतीय परंपरागत शैली को बराबर गति देते रहे। इनकी शैली राजपूत शैली थी। 'मुग़ल-शैली' भारतीय होने पर भी, परंपरा-गत राजपूत शैली के समान विशुद्ध भारतीय शैली न थी इसलिए दोनों कलाओं में पर्याप्त विभिन्नता बनी रही।

प्रेरणा मुग़ल शैली दर्बार की कला है। वह दर्बारियों और अमीरों के विलास और मनोरंजन की सामग्री है। उसका उद्देश्य थोथा मनोरंजन है। वहाँ कलाकार की आत्मा को बँध कर चलना पड़ा है। राजपूत कला कलाकार के हृदय की आनंदानुभूति

है। राजपूत कलाकार ने जीवन की जिन परिस्थितियों को देखा और अनुभव किया है, उन्हीं का उसने चित्रण भी किया है।

विषय मुग़ल शैली का विषय-क्षेत्र राजपूत शैली के विषय-क्षेत्र की अपेक्षा संकुचित है। दोनों के विषय में कुछ समानताएँ हैं। दोनों में कथाओं के आधार पर चित्र बने हैं और दोनों में व्यक्तिचित्रों का एक बड़ा भाग है। परन्तु जनसाधारण के नित्य के जीवन की मनोरम घटनाओं की जैसी सुन्दर अभिव्यक्ति राजपूत शैली में हुई है मुग़ल शैली में नहीं देखी जाती। मुग़ल कला में, संसार का वैभव-विलास, दर्बारी-शानशौकत, आदि सांसारिक विभूतियों से ही मुग़ल-कलाकार का सम्बन्ध था। जन-जीवन की सुखदुखात्मक अनुभूतियों, धार्मिक प्रेरणाओं और वैयक्तिक आवेशों को उसमें स्थान न था। राजपूत शैली में अधिकांश चित्रों का विषय धार्मिक है, मुग़ल शैली में अधिकांश चित्रों का विषय लौकिक है।

शैली १—शैली पर विचार करते हुए हम देखते हैं कि मुग़ल शैली **यथार्थ-प्रधान** है। आंतरिक भावों की अपेक्षा उसमें वाह्य-यथार्थ की ही प्रधानता है। राजपूत शैली अधिक **भावात्मक और काव्यमय** होकर आई है। राजपूत शैली में भाव और क्रिया की प्रधानता है। दोनों शैलियों में मुद्राओं का सफल अंकन हुआ है पर राजपूत शैली की मुद्राओं में जीवन, गति और प्रवाह है जो मुग़ल शैली में नहीं मिलता। मुग़ल हस्तमुद्राएँ अधिकांश में अशक्त और शिथिल हैं और कहीं-कहीं उनमें जड़ता भी आगई है। राजपूत कला में पशुओं का चित्रण 'मुग़ल शैली' की भाँति 'यथार्थ पूर्ण' न होकर भावपूर्ण है। पशुओं के अन्दर करुणा, स्नेह, प्रेम आदि भावों की सफल प्रतिष्ठा की गई है।

२—राजपूत शैली की **रेखाएँ** प्रवाहपूर्ण और भावानुवर्तनी होती हैं। जयपुर शैली की रेखाओं में कठोरता भी है। पर मुग़ल रेखाएँ कोमल, बारीक और सधापन लिए हुए हैं। ये गुण राजपूत रेखाओं में नहीं पाये जाते।

३—राजपूत और मुग़ल शैलियों के **रंग-विधान** में काफी समानता है। दोनों शैलियों का रंग-विधान चटकीला तथा रंग-योजना सामञ्जस्यपूर्ण है। राजपूत शैली का रंग-विधान चटकीला होते हुए भी सादा है। मुग़ल रंग-विधान पर ईरानी रंग-विधान का प्रभाव स्पष्ट है।

४—मनुष्य, पशु और प्रकृति के चित्रण में मुग़ल कला अधिक यथार्थपूर्ण है। मनुष्य, पशु तथा प्रकृति चित्रण में चेतनता का जो आरोप राजपूत शैली में मिलता है, वह मुग़ल शैली में दुर्लभ है।

५—मुग़ल-शैली में **आलंकारिक नमूनों और डिज़ाइनों** की भरमार है। राजपूत शैली में कला का यह अंश अछूता है।

६—चित्रों की **सामान्य रूपरेखा** में भी काफी अन्तर है। मुग़ल-चित्रशाला का चित्र सर्वाङ्गपूर्ण और सुन्दर होता है। चित्रों के हाशिये को अनेक प्रकार की बेलों और फूल-पत्तियों से सजाया जाता है। इसके बाद अत्यन्त सुन्दर लिपि में तत्सम्बन्धित कविता का आलेखन होता है। भारतीय चित्रकार की अवस्था ठीक इसके विपरीत है। उसकी दृष्टि में तो हाशिये की सजावट और सुन्दर लेख चित्र के सौन्दर्य को कम करने के लिए ही थे।

दो उपशैलियाँ जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि राजस्थानी शैली को जयपुर शैली भी कहा जाता है। यह राजपूत कला की एक उपशैली थी, जिसका प्रधान केन्द्र जयपुर था। पहाड़ी शैली की परम्परा जो उत्तर के पहाड़ी प्रदेशों में विकसित हुई जयपुर शैली की परम्परा से बिल्कुल भिन्न थी। इस उपशैली को पहाड़ी या काँगड़ा शैली कहा जाता है।

पहाड़ी और राजस्थानी शैलियाँ राजस्थानी और पहाड़ी शैली में काफी अन्तर है :

१. राजस्थानी शैली मुख्यतः आलंकारिक है। काँगड़ा शैली भावप्रधान है। भावों का चित्रण और उनके द्वारा रस-सृजन उसका प्रधान उद्देश्य है।

२. राजस्थानी चित्रों में रेखाएँ भावानुसार प्रवाहित नहीं होतीं। काँगड़ा शैली की रेखाओं के विपरीत वे कठोर हैं। पहाड़ी रेखा की कोमलता और मार्दव उनमें बहुत कम है। पहाड़ी शैली की रेखाएँ भावानुवर्तनी होकर आई हैं और कठोर से कोमल होती गई हैं; उनमें सर्वत्र एक जीवन, प्रवाह और स्पन्दन हैं। मुग़ल-आलेखन का 'पक्कापन' राजस्थानी शैली की अपनी विशेषता है।

३. राजस्थानी शैली का रंग-विधान सादा और अनाकर्षक है। काँगड़ा शैली का रंग-विधान कोमल और सामंजस्यपूर्ण है। उसमें मुग़ल शैली के रंग-विधान का प्रभाव है। स्थान-स्थान पर अँधेरा-प्रकाश का प्रयोग हुआ है।

४. पहाड़ी शैली का विषय-क्षेत्र राजस्थानी शैली के विषय-क्षेत्र से कहीं अधिक विस्तृत है।

१७—पुनरुत्थान काल
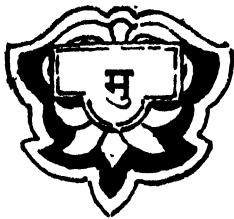
ग़ल और राजपूत शैलियों के ह्रास के पश्चात् ऐसे समय का आरम्भ होता है, जिसमें भारतीय कला पतन की अन्तिम सीमा तक पहुँच जाती है। यद्यपि मुग़ल, पहाड़ी तथा राजस्थानी शैलियों की परम्पराएँ अंग्रेजी राज्य के आरम्भ होने तक चलती रहीं, परन्तु अब इन शैलियों में जीवन-चेतना नहीं थी। मुग़ल चित्रकला अब एक नाम मात्र व्यक्तिचित्रों की कला रह गई थी। पटना के निकट की शैली पश्चिमी प्रभाव में आ गई थी। पहाड़ी शैली का पूरी तरह से पतन हो चुका था। १६ वीं शताब्दि के अन्त तक इन सब शैलियों का वास्तविक अन्त हो गया।

योरुपीय कला का प्रसार

इस समय भारतीय चित्रकला एक भारी पतन के युग में होकर गुजर रही थी। भारतवर्ष के बड़े बड़े नगरों में शिक्षा संस्थाएँ खुल जाने तथा उनमें पश्चिमी कला के सिद्धान्तों के आधार शिक्षा-कार्य आरम्भ होने से उसकी भावी उन्नति का मार्ग भी बन्द दिखाई देने लगा। विदेशी शिक्षा का शिक्षित-समाज के अन्दर बुरा असर हुआ। वे विदेशी कला को उच्च कोटि का तथा भारतीय कला को निम्न कोटि का समझने लगे। भारतीय कला निम्न श्रेणी की है उसमें कुछ सीखने योग्य नहीं—इस प्रकार की धारणाओं ने शिक्षित-समाज में अपना घर कर लिया।

पुनरुत्थान का आरम्भ

इस पतन की प्रतिक्रिया भी शीघ्र ही हुई। भारतीय इतिहास में यह बात महत्वपूर्ण है कि जहाँ विदेशी शिक्षा ने प्राचीन संस्कृति और कला को आघात पहुँचाया, वहाँ अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवयुवक ही तत्कालीन

स्थिति का सुधार करने आगे बढ़े। श्री ई० पी० हैवेल और श्री अवनीन्द्रनाथ टैगोर ऐसे ही व्यक्ति थे। श्री ई० पी० हैवेल उस समय कलकत्ता आर्ट-स्कूल के प्रधान थे। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य कलाओं का गंभीर, अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारतीय-कला का अतीत महान है, और संसार के कला-इतिहास में किसी से पीछे नहीं है। उन्होंने बताया कि भारतवासियों को अतीत से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। उसमें उनका विकास निश्चित और अधिक स्वाभाविक हो सकेगा। उन्होंने भारतीय-कला के पुनरुत्थान का बीड़ा उठाया ; इस क्षेत्र में उन्हें श्री टैगोर का सहयोग प्राप्त था।

वास्तव में इस नवीन जागृति को कार्य-रूप में परिणत करने का कार्य श्री टैगोर ने ही किया। उन्होंने अपने कुछ शिष्यों और साथियों को लेकर एक छोटा सा 'आर्ट-स्कूल' स्थापित किया। इस स्कूल को खोलने का प्रधान उद्देश्य योरुपीय प्रभाव से अलग रहकर प्राचीन भारतीय कला का नवीन रूप में विकास करना था। अतः प्राचीन भारतीय-चित्रकला को ही शिक्षा का आधार बनाया गया। यद्यपि आरम्भ में उन्हें अनेक निराशात्मक परिस्थितियों में होकर गुजरना पड़ा—उनके प्रयत्नों की कटु आलोचनाएँ की गईं ; योरुपीय कला के प्रेमी विद्यार्थियों ने सामूहिक रूप में विरोध भी किया क्योंकि उनकी समझ में अध्यापक उन्हें योरुपीय प्रकाश से बञ्चित रखना चाहते थे—परन्तु वे अपने प्रयत्नों में दृढ़तापूर्वक लगे रहे।

आन्दोलन का व्यापक रूप धीरे-धीरे इन प्रयत्नों ने विस्तृत रूप धारण किया। राष्ट्रीय आन्दोलन से भी इसको प्रगति मिली। स्वयं कलाकार टैगोर के व्यक्तित्व ने भी पुनरुत्थान को प्रभावित किया। टैगोर की प्रतिभा और लगन के कारण थोड़े ही दिनों में यह आन्दोलन देश-व्यापी होकर संसार-व्यापी हो गया। अनेक पाश्चात्य समीक्षकों ने इस स्कूल की सहानुभूति पूर्ण आलोचनाएँ की। श्री हैवेल के लेखों और पुस्तकों ने समीक्षा-क्षेत्र में क्रान्ति उपस्थित कर दी। डा० कुमार स्वामी ने देश-विदेशों में जाकर नवीन जागृति के महत्व को घोषित किया। देश-विदेश भारतीय कला की गति-विधि की ओर आकर्षित हुए। विदेशों में भारतीय कला की प्रदर्शनियाँ हुई। भारतीय कला की मौलिकता और आदर्शप्रियता की प्रशंसा की गई तथा भारतीय-कला की ओर कला-समीक्षकों का दृष्टिकोण अधिक उदार हो गया।

पुनरुत्थान के इस आन्दोलन ने शीघ्र ही लोकप्रियता प्राप्त कर ली। 'इण्डिया सोसायटी आफ़ ओरिएण्टल आर्ट' की स्थापना हुई, जिसका कार्य शिक्षा-दीक्षा के अतिरिक्त सामयिक प्रदर्शनियाँ कराने का भी था। पुनरुत्थान के वास्तविक महत्व और स्वरूप को, जनता में प्रकाशित करने में, डा० जेम्स, डा० स्टैला क्रामरिच, डा० कुमार स्वामी, श्री एन० सी० मेहता, श्री असितकुमार हलदर तथा श्री ओ० सी० गाँगुली ने जो योग दिया वह सराहनीय रहेगा।

आन्दोलन का महत्व भारतीय चित्रकला के इतिहास में इस आन्दोलन का अपना महत्व है। इस कारण हमें इस आन्दोलन को बहुत आदर की दृष्टि से देखना चाहिए। इसने भारतीय कला को फिर से जीवन प्रदान किया है। इसी के कारण भारत की कला को संसार में उचित सम्मान प्राप्त हुआ है। इसने भारतीय विद्यार्थियों को ग़लत मार्ग पर जाने से रोका है।

१८—पुनरुत्थान काल की चित्रकला

पुनरुत्थान-स्कूल अवनीन्द्रनाथ टैगोर ने जिस छोटे से आर्ट स्कूल की स्थापना की थी वही अपने विस्तृत रूप में 'बंगाल स्कूल' के नाम से विख्यात हुआ। पर पुनरुत्थान की इस चित्रकला को बंगाल-स्कूल का नाम देना ठीक नहीं क्योंकि एक तो बंगाल-स्कूल की कोई अलग शैली न थी। दूसरे पुनरुत्थान का प्रभाव सम्पूर्ण देश पर पड़ा था। हाँ इसे हम पुनरुत्थान स्कूल कह सकते हैं क्योंकि इसका प्रधान उद्देश्य चित्रकला के क्षेत्र में फिर से पुनरुत्थान लाना था। पुनरुत्थान-स्कूल की अपनी कुछ सामान्य विशेषताएँ थीं।

पुनरुत्थान-स्कूल की प्रेरणा के प्रधान श्रोत अजन्ता, मुगल और राजपूत शैली के चित्र थे। जापान, चीन तथा ईरान की चित्रकला का भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ा। पुनरुत्थान-स्कूल की शैली सरल, स्पष्ट और स्वाभाविक थी। भारतीय शैली और भारतीय टेकनिक का अनुसरण करते हुए अपनी कल्पना को स्वतन्त्र विकास देने में इस स्कूल के चित्रकार बहुत सफल हुए।

पुनरुत्थान-स्कूल की शैली में रेखाङ्कन पर विशेष रूप से बल दिया गया। उनमें पर्याप्त गति और कोमलता थी। अजन्ता, राजपूत, मुगल रेखाओं की शक्ति और प्रवाह तक पहुँचने का उसमें प्रयत्न हुआ।

शरीर-चित्रण में, पुनरुत्थान-स्कूल की शैली ने प्राचीन परम्पराओं और रूढ़ियों को ही अपनाया। सामान्य आकृति-चित्रण की उसमें प्रधानता रही इस क्षेत्र में भी उसे अजन्ता से प्रेरणा मिली।

रंग-योजना भी अत्यधिक कोमल और सामञ्जस्य पूर्ण थी।

पुनरुत्थान-स्कूल में 'वाटर-कलर' और 'वाश टेकनिक' का प्रयोग हुआ।

अजन्ता इत्यादि से प्रेरणा ग्रहण करते हुए भी इस स्कूल में मौलिकता की कमी नहीं थी। यह मौलिकता विषय के सम्बन्ध में सब से अधिक थी। इस स्कूल के चित्रों का विषय क्षेत्र बहुत विस्तृत था। रामायण, महाभारत, कालिदास के नाटक और संस्कृत की अन्य साहित्यिक रचनाएँ, घरेलू जीवन, आध्यात्मिक अनुभूति, भारत का प्राचीन इतिहास और पौराणिक कथाएँ इन सभी से स्वतन्त्र रूप से विषय-चयन किया गया।

'पुनरुत्थान-स्कूल' की स्थापना टैगोर ने भारतीय कला के प्रचार की दृष्टि से की थी। प्रचार आन्दोलन लाना उसका प्रधान उद्देश्य था। बंगाल स्कूल एक सर्वथा नवीन स्कूल भी न था। उसकी प्रेरणा का श्रोत प्राचीन परम्परागत कला थी। यद्यपि कलाकार टैगोर और उनके शिष्यों में प्रतिभा और मौलिकता का अभाव न था परन्तु उनके बाद पुनरुत्थान-स्कूल की शैली में कमज़ोरियाँ आने लगी। इस स्कूल की शैली की कमज़ोरियाँ भी स्पष्ट हैं।

यद्यपि चित्रकारों ने अजन्ता, राजपूत और मुग़ल रेखाओं का अनुकरण किया पर वे उनके गौरव को नहीं पहुँच सके। रेखांकन में नवीन, मौलिक और कलात्मक प्रयोगों की कमी रही।

अधिकांश चित्रों की रंग योजना यद्यपि कोमल और सामञ्जस्य-पूर्ण थीं परन्तु उसमें अतिरञ्जित कोमलता आ गई। बहुधा चित्रों में एक ही प्रकार की रंग-योजना के प्रयोग से नीरसता का समावेश हो गया। रंग-योजना के सम्बन्ध में एक अन्य बात यह है कि अजन्ता की गढ़नशीलता का उसमें अभाव रहा। अजन्ता के रंगों की ठोस गढ़न उसमें नहीं आई।

समय के प्रभाव से विषय में भी पर्याप्त संकुचन हो गया। और अब केवल गोपियाँ, कृष्ण, शिव, पार्वती के अर्थहीन चित्र ही सामने आ रहे हैं।

पुनरुत्थान-स्कूल के चित्रकारों ने डिजाइन के महत्व को नहीं समझा। अजन्ता की डिजाइनों के अपार कोष से वे किसी दिशा में लाभ नहीं उठा सके।

ऊपर पुनरुत्थान-स्कूल की जिन त्रुटियों की ओर संकेत हुआ है, उसके गुणों को देखते हुए नगण्य हैं। उनमें से कुछ का आरोपण उन्हीं समीक्षकों के द्वारा हुआ है, जिन्होंने पश्चिमी आँखों से पूर्वी कला को देखा है। यद्यपि समय बदला हुआ है, परन्तु बंगाल-स्कूल की कटु आलोचनाएँ अब भी होती हैं। इतना अवश्य है कि हैवेल और टैगोर के बाद आज के किसी आधुनिक कलाकार को उस प्रकार की कुरुचिपूर्ण आलोचनाओं का शिकार नहीं होना पड़ा।

अन्य-क्षेत्र पुनरुत्थान आन्दोलन से देश के दूसरे भागों में भी जागृति फैली है। बम्बई के आर्ट स्कूल के विद्यार्थी अजन्ता के कला सिद्धान्तों को हृदयंगम करने की चेष्टा कर रहे हैं। परन्तु उन्होंने अजन्ता की आत्मा में घुसने का प्रयत्न नहीं किया इसीलिये उनकी शैली और भाव में भारतीयता की कमी है परन्तु इसका मुख्य कारण यह है कि उनकी शिक्षा प्रणाली बराबर पाश्चात्य ही रही है। बम्बई स्कूल की शैली पुनरुत्थान की शैली से बिल्कुल अप्रभावित है। योरुपीय और अजन्ता के आलंकारिक नमूनों के सामञ्जस्य द्वारा वे अपना विकास कर रहे हैं।

गुजरात में श्री रविशंकर रावल और उनके साथियों की कला अवश्य पुनरुत्थान शैली से प्रभावित है।

१६—पुनरुत्थान काल के चित्रकार
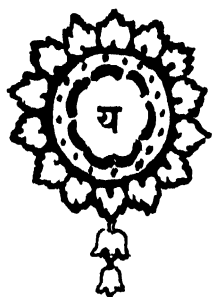
यद्यपि पुनरुत्थान-स्कूल की कुछ निश्चित विशेषताएँ थीं परन्तु इस स्कूल के सभी चित्रकार इन्हीं विशेषताओं से बँध कर नहीं चले। उन्होंने अपना चिन्तन स्वतन्त्र रखा। इसके अतिरिक्त ऐसे भी चित्रकार थे जिन्होंने पुनरुत्थान-स्कूल से अप्रभावित रह कर कार्य किया, जिससे उनकी कला सर्वथा वैयक्तिक बनी रही। इस प्रकार पुनरुत्थान काल में सामूहिक शैलियों के विकास के साथ व्यक्तिगत शैलियों का अस्तित्व भी बना रहा।

अवनीन्द्रनाथ टैगोर टैगोर केवल सुधारक और आचार्य ही नहीं वरन एक प्रतिभासम्पन्न मौलिक कलाकार के रूप में भी हमारे सामने आते हैं, जिन्होंने एक ओर पुनरुत्थान आन्दोलन का बीड़ा उठाया, दूसरी ओर चित्रकला का रचनात्मक कार्य किया, जिससे पुनरुत्थान शैली को भारी प्रेरणा मिली।

सभी महान आचार्यों के समान टैगोर प्रयोगकर्ता थे। उनकी कला समन्वयवादी है। उनमें देशी-विदेशी शैलियों से प्रेरणा पाकर सबको अपना बना लेने की अद्भुत क्षमता है। इसी से उनके चित्रों में चीनी, ईरानी, जापानी सभी कुछ भारतीय हो उठा है।

बंगाल स्कूल के कटु-आलोचक प्रायः यह कहते हैं कि टैगोर ने योरपीय कला की सभी मुख्य विशेषताओं को लेकर जापानी चित्र शैली से उसका समन्वय उपस्थित किया है। वास्तव में संयोजन के कतिपय सिद्धान्तों के अतिरिक्त योरपीय प्रभाव किसी भी क्षेत्र में

नहीं और जापानी प्रभाव तो उनके प्रारम्भिक चित्रों के रंग-विधान में ही देखे जा सकते हैं। यह कथन कितना अपरीक्षित है, यह उनके 'राधाकृष्ण' से और भी स्पष्ट हो जाता है। इस चित्र की मौलिकता पर कौन आक्षेप कर सकता है? इसमें योरपीय कला—ऐसी कला का जो केवल योरपीय ही कही जा सके—स्पर्श तक नहीं। चित्र जापानी शैली में अंकित है। टेकनिक चीन की है। अभिव्यक्ति हिन्दू हैं और चित्र का सम्पूर्ण आकृति-विधान अजन्ता के ढंग का है। मध्यकालीन पहाड़ी शैली का प्रभाव भी स्पष्ट है शरीर के भंग, हस्तमुद्राओं और नेत्रों के विभिन्न भावों से सारा चित्र मुखरित हो रहा है। इतना सब होते हुए भी चित्र में अपूर्व मौलिकता है। वास्तव में टैगोर की कला की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह एक परम्परा विशेष को लेकर चली है, फिर भी वह सम्पूर्ण शैलियों का आत्मसात् कर रही है।

पर टैगोर ने बड़े अंश में प्राचीन भारतीय चित्रकला से—विशेषकर अजन्ता से ही—प्रेरणा ग्रहण की है। उन्होंने शरीर-अजन्ता के नियमों का ही अनुसरण किया है। टैगोर ने भारतीय चित्रकला की रहस्यभावना, प्रतीक-पद्धति, धार्मिकता को अपनी कल्पना और प्रतिभा का योग देकर जो आधुनिक भारतीय कला का भवन निर्माण किया है वह सचमुच अपूर्व है।

टैगोर सच्चे रूप में एक भावुक कलाकार हैं। अतः उनकी कला में पर्याप्त वैयक्तिकता है। टैगोर के चित्रों में तन्मयता और एकाग्रता की पूरी छाप है। 'दी पासिंग आफ शाहजहाँ' कलाकार की एकाग्रता के कारण ही इतना महान बन सका है। चित्र का विषय अत्यन्त कारुणिक है; परन्तु चित्र में किसी प्रकार की तीव्रता नहीं आने पाई। फिर भी उसमें हृदय को अपनी सम्पूर्ण आर्द्रता से द्रवित करने की एक अद्भुत शक्ति है। मरणासन्न शाहजहाँ की

ताज की ओर लगी हुई एकटक आँखें अपनी मूक-वेदना में कितना रहस्य छिपाए हैं। जहानआरा की गिरी हुई शिथिल आकृति के साथ शाहजहाँ की व्यग्रता से उठी हुई ग्रीवा और धुँधले वातावरण में अंकित शाहजहाँ की बँधी हुई दृष्टि, एक दृष्टि-पथ का निर्माण करती दिखाई देती है, जिसमें दर्शक अपने को कुछ क्षणों के लिए भूला हुआ-सा अनुभव करता है।

उनके कतिपय चित्रों में हास्य की एक क्षीण रेखा विद्यमान रहती है। 'गणेश और पार्वती,' तथा 'पानी के बुलबुले बनाता हुआ बच्चा' इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

इनके अन्य चित्रों में 'बुद्ध दि मैन्डिकैण्ट' 'जैपैनिज डान्सर' 'टीअर ड्रॉप्स ऑन लॉटस लीफ़' 'बिल्डिंग ऑव दि ताज' 'दि ड्रीम ऑव दि ताज' विशेष रूप से कलात्मक हैं।

टैगोर एक महान सुधारक थे। कलाकार का जीवन तो उनकी व्यक्तिगत साधना थी, जिसमें भी वे आगे रहे। वे आधुनिक भारतीय कला के सबसे बड़े जीवनदाता हैं और उसी दृष्टि से उनका मूल्यांकन होना चाहिए।

नन्दलाल बोस नन्दलाल बोस पुनरुत्थान काल के सबसे अधिक प्रतिभासम्पन्न और निस्सन्देह सबसे अधिक प्रसिद्ध कलाकार हैं।

बोस के व्यक्तित्व के समान ही उनकी कला में भी सादगी और अकृत्रिमता है। उन्होंने अपनी कला को सभी विदेशी शैलियों के प्रभाव से मुक्त रखा है। टैगोर की शैली के विरुद्ध इनकी शैली में सभी प्रकार की शैलियों का समन्वय नहीं है।

बोस ने अजन्ता से प्रेरणा ग्रहण की है। आधुनिक कलाकारों में वे ही अजन्ता के सबसे अधिक निकट हैं। रेखा, भाव, शरीरचित्रण सभी में उनकी शैली अजन्ता से निकटतम सम्बन्ध रखती है। उनकी रेखाओं में शक्ति और जीवन है, कल्पना उन्नत और महान है और शरीर-चित्रण में तो उन्होंने असंख्य सामान्य आकृतियों की सृष्टि की है।

बोस के चित्रों का विषय हिन्दू पौराणिक तथा धार्मिक आख्यामिकाओं और बुद्ध-जीवन की कथाओं से लिया गया है। मूल रूप में शिव, विष्णु, लक्ष्मी, राम, कृष्ण के भिन्न-भिन्न रूपों का ही चित्रण हुआ है। बोस ने वही विषय चुना है, जिसमें अत्यन्त प्राचीन काल से अभिव्यक्ति होती रही है। परन्तु वे सच्चे कलाकार हैं। उन्होंने प्राचीन शैली और विषय अपने ढंग की अभि-व्यक्ति में सर्वथा नवीन रूप दे दिया है। उनकी व्यक्तिगत कल्पना से पुरानी आत्मा भी नवीन हो उठी है।

बोस के आरंभिक चित्रों में 'भीष्म-प्रतिज्ञा' का संयोजन बहुत सुन्दर बन पड़ा है। जिसमें कुमार भीष्म धीवर के सम्मुख आजन्म अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा करते हुए दिखाए गए हैं। चित्र में धीवर-कन्या और उसकी सहेलियों के भाव और मुद्राएँ दर्शनीय हैं। (चित्र नं० ४३)

उनका प्रसिद्ध चित्र 'शिवा मोर्निङ्ग ओवर पार्वती' कला-क्षेत्र में एक अपूर्व देन है। यहाँ कलाकार की उन्नत कल्पना का सच्चा रूप देख पड़ता है। चित्र का सारा करुण दृश्य अपने उदासीनता के मनोभावों से मार्मिक वातावरण की सृष्टि कर रहा है। उनके अन्य कलापूर्ण चित्रों में 'सती' 'सुजाता' 'उमा का शोक' 'नतीर पूजा' मुख्य हैं।

प्रतिमा चित्र नं० ५३ नन्दलाल बोस
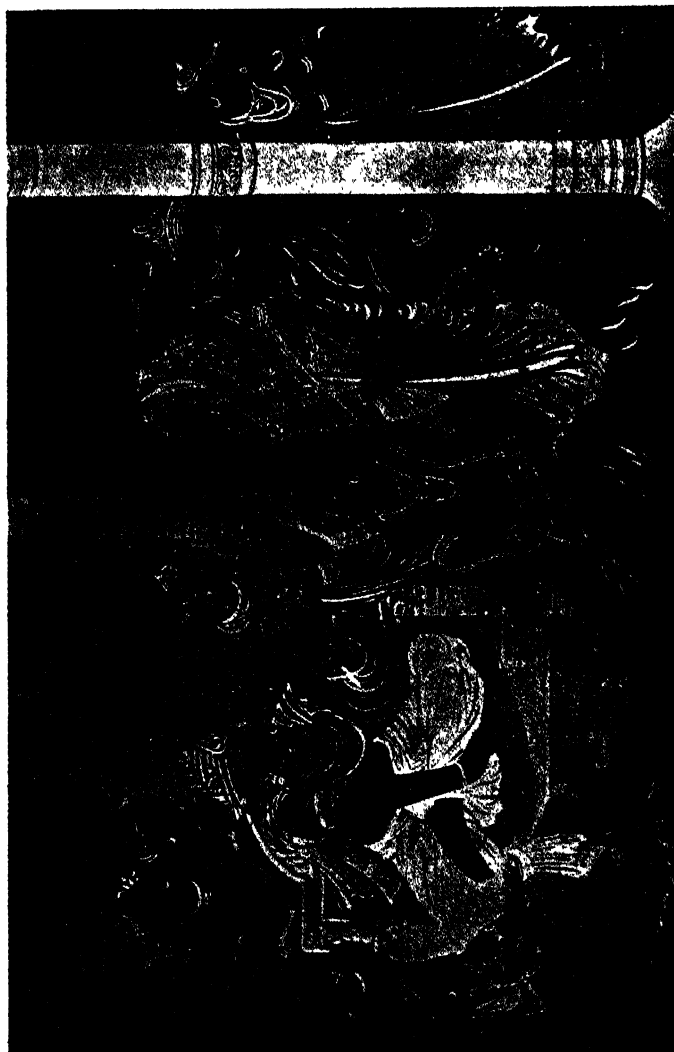
संक्षेप में, बोस महोदय ने चाहे अजन्ता से प्रेरणा ग्रहण की हो, या प्राचीन विषयों को अपनी रचना का आधार बनाया हो, अथवा स्वतंत्र रूप में मौलिक सृष्टि की हो—प्रत्येक दिशा में वे भारतीय कला को पुनर्जीवन दे रहे हैं।

असितकुमार हलदर

श्री हलदर और बोस टैगोर के सर्वप्रथम शिष्यों में से हैं। परन्तु दोनों के व्यक्तित्व में अन्तर है, जिससे उनकी कला में भी पर्याप्त भिन्नता आ गई है। बोस महोदय बीसवीं शताब्दि के अर्ध भाग में भी शान्तिनिकेतन में शान्तिपूर्वक कला-साधना में तत्पर हैं। हलदर की प्रतिभा इतनी एकांगी नहीं है। टैगोर के शिष्यों में वे सबसे अधिक शिक्षित और व्यावहारिक हैं। सर्वसाधारण में, कला के प्रचार तथा उसके प्रति आदर-भावना उत्पन्न करने में हलदर की क्रियाशीलता ने बहुत योग दिया है। कला-विषयक उनके परिचयात्मक लेख कला-क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

हलदर की आरम्भिक रचनाएँ भित्तिचित्रों की शैली में अंकित हैं। बाद में उन्होंने लकड़ी पर लाख-चित्रण 'Lacquer Painting' के प्रयोग किये हैं। अब श्री हलदर ने लखनऊ आर्ट स्कूल से अवकाश ग्रहण कर लिया है। अतः इस दिशा में उनका कार्य-क्षेत्र अधिक विस्तृत है। 'उमरखय्याम' 'मेघदूत' 'ऋतुसंहार' 'महाभारत' आदि अनेक चित्रित ग्रन्थ शीघ्रता से सामने आ रहे हैं।

कलाकार के रूप में—टेकनिक की सरलता तथा भाव-प्रवणता यह हलदर की दो तात्विक विशेषताएँ हैं। सौकुमार्य और माधुर्य उनके चित्रों के प्राण हैं। महाकाली (चित्र नं ४४) और सरस्वती उनकी आरंभिक कृतियों में से हैं। 'दि फ्लेम ऑव म्यूज़िक' उनकी मधुरता का महान स्मारक है। 'कृष्णाज़ डान्स' में मधुरता है। इन
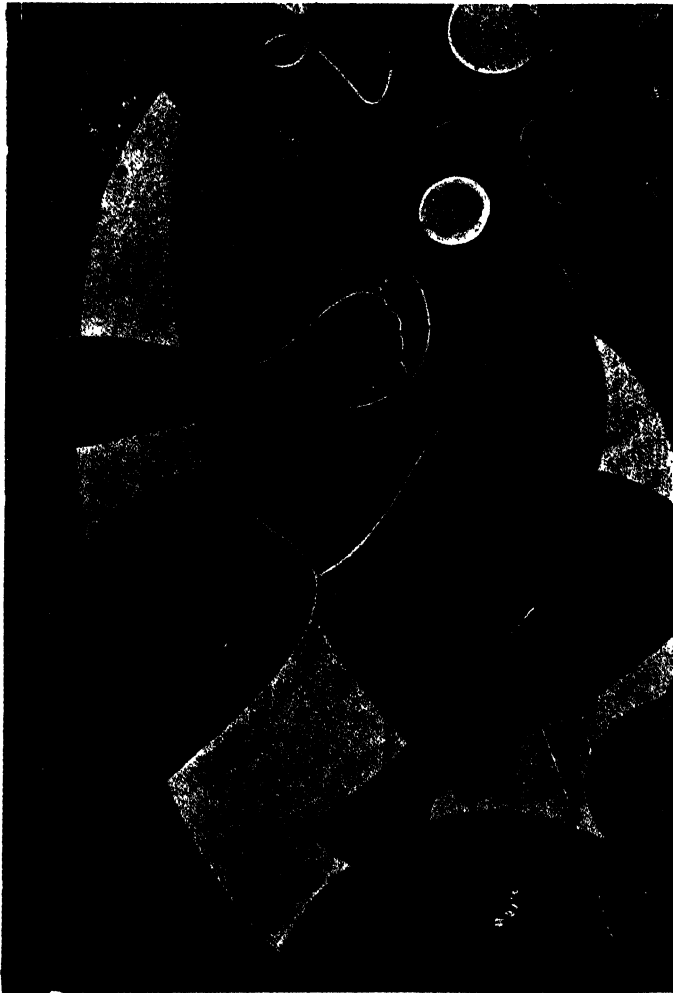
महाकाली] [असितकुमार हलदर

चित्र नं० ४४

चित्रों में गोपी, गोप के रूप में चित्रित संथाली बालक-बालिकाएँ अमर हो गए हैं। श्री हलदर के ग्रंथ-चित्र भी काफी उच्च कोटि के हैं। 'उमरख़य्याम' के चित्र इस दिशा में सुन्दर प्रयास हैं।

माधुर्य हलदर का प्रधान गुण है। यह उनके रेखा, रंग-विधान, मुद्रा-अंकन तथा संयोजन सभी में समान रूप से अवस्थित है। यह माधुर्य का गुण ही है, जिसने हलधर की टेकनिक-गत सरलता को जन्म दिया है।

श्री हलधर टैगोर के पर्याप्त निकट है। टैगोर की समन्वय वृति उनमें भी है; पर मधुरता की ओर उनका विशेष आग्रह है। बोस की शैली में जो सरलता है, वह हलधर में नहीं है, न वह बोस के आचार्यत्व तक पहुँच पाते हैं। पर शायद बोस हलदर की भावुकता और मधुरता को नहीं पा सकते।

के० वेंकटप्पा श्री के० वेंकटप्पा भी टैगोर के आरम्भिक शिष्यों में से हैं। आरम्भ में मद्रास स्कूल के पाश्चात्य प्रभावों में शिक्षित होने के कारण वेंकटप्पा में पाश्चात्य शैली का किंचित प्रभाव है। उनका रंग-विधान मधुर, चटकीला है। वेंकटप्पा के चित्रों में मुग़ल और राजस्थानी वैभव की स्पष्ट झलक है। रेखाएँ बारीक और सशक्त हैं। प्रकृति-चित्रण में यथार्थवादी स्पर्श की अधिकता है। पर उनके इस यथार्थ में प्रकृति की आत्मा का उद्‌घाटन हुआ है। पशु-पक्षियों के ब्यौरेवार अंकन में उनकी तुलना मंसूर की कला से की जा सकती है।

उनके चित्रों में 'मृगतृष्णा', 'राम और स्वर्ण मृग' तथा 'बर्ड स्टडी' पर्याप्त मनोहर हैं।

देवीप्रसाद राय चौधरी

श्री देवीप्रसाद राय चौधरी, अवनीन्द्रनाथ के शिष्यों में दूसरे महान् चित्रकार हैं। किसी स्कूल विशेष की नियमित-श्रृङ्खला में बँध कर रहना उन्हें पसन्द नहीं है। इसीलिए उन्होंने अपने को पुनरुत्थान-स्कूल से बहुत समय पहले से ही पृथक कर लिया है। चाहे वे चित्र के वाह्य रूप-रंगों में योरपीय शैली से प्रभावित हुए हों पर इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने उस विदेशी रूप में भी भारतीयता को सुरक्षित रखा है।

श्री चौधरी यथार्थवादी कलाकार हैं। प्राचीन रूढ़ियों से उन्हें चिढ़ है। उनके इस यथार्थवादी दृष्टिकोण ने विषय और शैली दोनों की निश्चित विशेषताओं का समावेश किया है। ये अतीत के राम और शिव से प्रेरणा न लेकर वर्तमान परिस्थितियों से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। सौन्दर्य-सृष्टि कलाकार का प्रमुख लक्ष्य होता है, जिसे वह किसी भी तरह व्यक्त कर सकता है। चौधरी ने समय की प्रत्येक वस्तु और व्यापार को साकार करने का प्रयत्न किया है। यह उनकी कला का महान् लक्ष्य है।

शैली में भी उन्होंने 'भारतीय शरीर-शास्त्र' के मानों तथा प्रत्येक क्षेत्र में पाश्चात्य कला से घृणा करने की बंगाल स्कूल की एकांगी प्रवृति का बहिष्कार किया है। वे पूर्व और पश्चिम की सामंजस्य-प्रवृति को लेकर चले हैं। उन्होंने एक ओर चित्रों में गोलाई, छाया-प्रकाश, संयोजन का समावेश करके चित्रों के यथार्थ रूप का निर्माण किया है। दूसरी ओर आँख, मुँह, हाथ के अनुभावों के चित्रण द्वारा उनमें प्राण फूँक दिये हैं।

चौधरी 'नारी-चित्रण' में विशेष कुशल हैं। इस प्रकार के चित्रों

में 'क्यूरियौसिटी', 'क्षत्राणी', 'प्रतीक्षमान', 'दूतन' और 'अभिसारिका' मुख्य हैं।

पोर्ट्रेचर में चौधरी अपूर्व हैं। वाटर-कलर में चित्रित होने पर भी वस्तुओं में तैल-चित्रों का सा घनत्व आ गया है। व्यक्ति के बाह्य-रूप का समस्त यथार्थता के साथ चित्रण हुआ है। साथ ही व्यक्ति के रूप-चित्रण के पीछे उसके व्यक्तित्व को उभारने की पूरी चेष्टा की है।

उनकी प्रत्येक रचना हर दृष्टि से संतुलित है। उनके दृश्य-चित्रण को देखकर अकस्मात् अवनीन्द्रनाथ का ध्यान आ जाता है। बाद के चित्रों में कुछ चीनी और जापानी प्रभाव आ गए हैं। वातावरण को चित्रित करने में वे सिद्धहस्त हैं। उनके 'थ्रू फ़ाउल वैदर' और 'अप्रोच ऑव मिस्ट' कला की दृष्टि से उच्च कोटि के चित्र हैं।

अन्य उच्चकोटि के चित्रों में 'मुसाफिर', 'जीवन-सन्ध्या' और 'संध्या-ज्योति' प्रमुख हैं। 'मुसाफिर' में एक मुसलमान यात्री का चित्र है। यात्री में धर्म के प्रति अपूर्व श्रद्धा है और उसकी दृष्टि में यह यात्रा ही उसका जीवन है। 'जीवन-संध्या' में निराशा और शिथिलता की प्रखर रेखा है। 'संध्या-ज्योति' में संध्या के शान्त और पवित्र वातावरण में अलौकिक ज्योति का आभास दिया गया है।

चौधरी हमारे युग के महान कलाकार हैं। उनकी तुलना भारत के ही नहीं वरन् किसी भी देश के कलाकार से की जा सकती है।

रहमान चग़ताई

चग़ताई आधुनिक युग के प्रतिभासम्पन्न मौलिक कलाकार हैं। उनकी रचनाओं की प्रायः सभी मुख्य कलाकारों द्वारा प्रशंसा की गई है। ऐसे कलाकार कम हैं जिन्होंने विदेशों में रहमान चग़ताई के समान आदर और सम्मान प्राप्त किया हो।

चग़ताई की कला का सबसे प्रमुख तत्व रेखांकन है। चग़ताई की रेखाएँ सूक्ष्म, कोमल और स्पष्ट हैं। उनमें कुछ ऐसा नहीं जिसे धुँधला अस्पष्ट और अनिश्चित कहा जा सके। उनकी रचनाएँ भाव-प्रधान हैं। आकृति-चित्रण विशेष कलात्मक है। शरीर-रचना आलंकारिकता लिए हुए है। शरीर-रचना चग़ताई की अपनी वस्तु है। रंग-योजना भी चग़ताई की निराली है, उसका माधुर्य अपूर्व है।

चग़ताई ने चित्रों का विषय जीवन और संसार के विभिन्न क्षेत्रों से लिया है; परन्तु प्रत्येक चित्र में चग़ताई का माधुर्यपूर्ण व्यक्तित्व ही उभर कर आया है।

चग़ताई के दो कलात्मक संग्रह 'मुरक्क-ए-चग़ताई और 'नक्काश-ए-चग़ताई' हैं। इन चित्रों में इनकी चित्रण-प्रणाली नितांत सफल और पूर्ण है। 'दि वैब ऑव लाइफ़', 'एक्सटिंग्विश्ड फ्लेम', 'लाइफ़' और 'दि हरमिट' उनकी महान कृतियों में से हैं।

जैमिनीराय स्थूल रूप से देखने पर, जैमिनीराय एक प्रयोग कर्ता के रूप में दिखाई देंगे। उन्होंने पुस्तक और भित्तिचित्र, पट और पोर्ट्रेचर सभी प्रकार की छोटी-बड़ी रचनाएँ की हैं। जैमिनीराय की पट-शैली के चित्र जगन्नाथपुरी की पट-शैली के चित्रों की ओर आकर्षित करते हैं। अद्भुत आलंकारिक आकृतियाँ, उनकी कान तक चली गई नुकीली आँखें तथा संकेत रूप से बनाए गए अंग उनकी सरल और प्रभावपूर्ण रंगानुभूति और संयोजन की सरलता इस शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

उपर्युक्त कलाकार पुनरुत्थान कालीन शैली को विभिन्न धाराओं का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। उनमें से अधिकांश ने पुनरुत्थान स्कूल में

शिक्षा ग्रहण की है, परन्तु वे अपनी वैयक्तिक शैलियों में इतने विभिन्न हैं कि एक दूसरे से निश्चित अन्तर पर दिखाई देते हैं। यह बात अवनीन्द्रनाथ, बोस, हलदर, वेंकटप्पा, चौधरी, चग़ताई, जैमिनीराय की शैलियों में स्पष्ट दिखाई देती है। बोस सात्विक प्रकृति के हैं। उनका स्थान एक आचार्य रूप में बहुत ऊँचा है। अजन्ता की चित्रण-पद्धति और रेखाओं में वे अनन्य हैं। हलदर की शैली मधुर, भावुक, और सुकुमार है। चौधरी की कला पूर्णतः लौकिक है—यथार्थता उसका प्रधान गुण है। वे भावुक, रसिक और यथार्थवादी कलाकार हैं और सच्चे अर्थ में सबसे अधिक आधुनिक हैं। वेंकटप्पा की शैली सरल होते हुए भी, उसमें मुग़ल और राजपूत वैभव की प्रचुरता है। चग़ताई में माधुर्य और मोहनी है। जैमिनीराय यद्यपि स्थूल रूप से विभिन्न शैलियों के प्रयोगकर्ता हैं, परन्तु उनकी पट-चित्रों की शैली में नवीनता है और उस क्षेत्र में वह निसंदेह आगे हैं। श्री अवनीन्द्र नाथ टैगोर एक स्थिर नक्षत्र की भाँति हैं जिसके चारों ओर ये कलाकार चक्कर लगाते दिखाई देते हैं। अन्य कलाकारों में गगनेन्द्रनाथ, शारदाचरन उकिल, मुकुलचन्द्र दे, पुलिनबिहारी दत्त, रामरात्र, सगरेन्द्रनाथ गुप्त, मजूमदार, शैलेन्द्रनाथ दे, अमृतशेरगिल, श्री कुशलकुमार मुकुर्जी, प्रतिभासम्पन्न कलाकार हैं।

२०—आधुनिक काल में चित्रकला

नरुत्थान काल के आन्दोलन ने चित्रकला को एक विशेष दिशा में प्रेरित किया था। उस समय नवयुवक चित्रकारों में यथार्थ के प्रति एक घृणा सी हो चली थी। इसलिए कला के कई आरम्भिक और महत्वपूर्ण विभागों का उचित विकास न हो सका—अधिकांश में काल्पनिक चित्रों की ही रचना हुई। फिर भी पाश्चात्य प्रभावों का क्षेत्र इतना विस्तृत था कि विरोध होने पर भी उनका अध्ययन बराबर चलता रहा। आधुनिक काल में तो चित्रकला के सभी विभागों की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। वस्तु-चित्रण, मानव-चित्रण, प्रकृति-चित्रण, डिज़ाइन, पोस्टर, काल्पनिक चित्रण आदि चित्रकला के विभागों को आवश्यकतानुसार विभिन्न दिशाओं में अपनाया जा रहा है।

चित्रकला के मुख्य विभाग

चित्रकला हृदय की रस-अवस्था का प्रकाशन है। यह प्रकाशन दो रूप ग्रहण कर सकता है। वह वस्तु के वाह्य-रूप का चित्रण हो सकता है अथवा वह कलात्मक संयोजन का रूप ग्रहण कर सकता है। इस प्रकार चित्रकला के दो स्थूल विभाग हो जाते हैं। (१) अनुकृति (Copy) (२) संयोजन (Composition)। अनुकृति विषय भेद के अनुसार तीन प्रकार की होती है—(१) वस्तु-चित्रण (२) मानव-चित्रण (३) प्रकृति चित्रण। इसी प्रकार संयोजन भी कई प्रकार का होता है। (१) (डिज़ाइन) आलंकारिक चित्रण में रेखा, आकार, बल और रंगों का संयोजन अधिक सूक्ष्म होता है। (२) व्यापारिक चित्रण या विज्ञापन चित्रों में संयोजन का मुख्य उद्देश्य व्यापारिक क्षेत्र में चित्रकला के प्रभावोत्पादकता के सिद्धान्तों का उपयोग करना होता है। (३) काल्पनिक चित्रण में—संयोजन वाह्य यथार्थ के निकट होता है पर इसमें चित्रकार की अपनी अनुभूतियाँ प्रधान होती हैं।

२१—वस्तु-चित्रण

स्तुओं को नमूने के रूप में सामने रखकर खींचने की कला वस्तु-चित्रण (Still life painting) कहलाती है। वस्तु-चित्रण के दो महत्वपूर्ण अंग हैं—

१. पर्सपैक्टिव के सिद्धान्तों के अनुसार यथार्थ आकार-रचना।
२. वस्तु के रंग आदि में परिवर्तन उत्पन्न करने वाले अंधेरा-प्रकाश को यथार्थ रूप में अंकित करना।

आकार-रचना आकार-रचना के लिए वस्तुओं के ठीक-ठीक अनुपात को ज्ञात करना आवश्यक होता है। यद्यपि छोटी-छोटी वस्तुएँ केवल देखकर बिना नाप-तोल के बनाई जा सकती हैं; परन्तु एक बड़े समूह को खींचने के लिए नाप लेने चाहिए। चित्र नं० ४५ यह बताता है कि पैंन्सिल को एक हाथ की दूरी पर किस प्रकार नाप लेते समय पकड़ना चाहिये। यह नाप पैंसिल को समानान्तर धरातलीय और लांबिक करके—उसको वस्तु के सामने इस प्रकार रखकर कि एक आँख से देखने पर वस्तु पैंसिल की लम्बाई के अन्दर प्रतीत हो—प्राप्त किया जा सकता है। (चित्र नं० ४५)
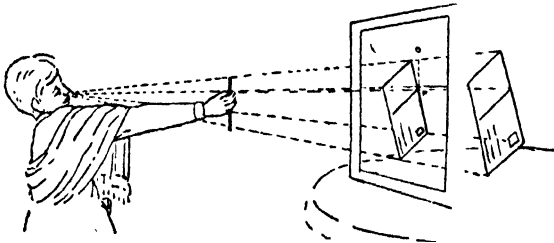
चित्र नं० ४५

अनुपात ज्ञात करते समय हमें देखना चाहिए कि :—

१. एक वस्तु दूसरी वस्तु से कितनी छोटी या बड़ी है।
२. एक धरातल का दूसरे धरातल से क्या अनुपात है।
३. एक वस्तु के विभिन्न भागों में क्या अनुपात है।

आकार-रचना में दृश्या के नियमों का समुचित ध्यान रखना चाहिए। वस्तु-चित्रण में जब तक उनका प्रयोग नहीं होगा तब तक उसको सही नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में दृश्या के निम्नलिखित नियम ध्यान में रक्खे जायें।

(१) रेखाएँ या धरातल, जो दर्शक की आँखों के समानान्तर होते हैं, वैसे ही खींचे जाते हैं।

(२) लम्ब सदैव भूमि रेखा पर लम्बवत् ही खींचे जाते हैं।

(३) दर्शक से आगे पीछे हटती हुई समानान्तर क्षितिजीय रेखाएँ और धरातल झुकते हुए दिखाई देते हैं और एक अदृश्य बिंदु पर मिलते हैं, जो क्षितिज-रेखा पर ही कहीं होता है।

(४) दर्शक से आगे-पीछे हटती हुई रेखाएँ और धरातल जो क्षितिज के समानान्तर नहीं होते, उनके अदृश्य बिन्दु उन सीधी खड़ी रेखाओं में होते हैं, जो क्षितिज-रेखा के ऊपर-नीचे खींची जाती हैं।

(५) बराबर ऊँचाई के लम्ब जब एक दूसरे से आगे-पीछे होते हैं, दर्शक से ज्यों-ज्यों पीछे हटते जाते हैं, ऊँचाई में क्रमानुसार छोटे होते जाते हैं।

(चित्र नं० ४६) में एक पुस्तक की विभिन्न स्थितियाँ दिखाई गई हैं। यह स्थितियाँ बताती हैं कि :—

१—पुस्तक की सब समानान्तर रेखाएँ आगे चलकर मिल जाती है।

२—दर्शक की दृष्टि में वे एक अदृश्य बिन्दु पर मिलती हैं।

३—यदि पुस्तक आँखों से ऊँचाई पर है, तो निचला तला और यदि वह आँखों से नीचे है, तो उसका ऊपरी धरातल दिखाई देता है।

४—पुस्तक की वे क्षितिजीय (Horizontal) रेखाएँ जो आँखों के समानान्तर हैं क्षितिजाकार खींची जाती हैं।

५— सब लाम्बिक रेखाएँ लम्ब-रूप में ही खींची जाती हैं।

गोलाकार वस्तुओं में भी यही नियम लागू होते हैं। स्थिति के अनुसार रेखाओं के छोटी-बड़ी होने के साथ गोलाकार धरातल अंडाकार हो जाते हैं। गिलास या डोल जैसी आकृतियों में जहाँ दो गोलाकार धरातल एक दूसरे के समानान्तर होते हैं, उन गोलाकार धरातलों के केन्द्रों को मिलाने वाली रेखा सम्पूर्ण स्थितियों में दोनों धरातलों के लम्बरूप होती हैं। (चित्र नं० ४७)

अँधेरा-प्रकाश और छाया आकार-रचना के बाद वस्तु में अँधेरा-प्रकाश देना चाहिए। अँधेरा-प्रकाश के अध्ययन के लिए एक प्रकाश कई प्रकाशों की अपेक्षा अधिक सुविधापूर्ण होता है; क्योंकि उसमें अँधेरा-प्रकाश और छाया की अस्पष्टता नहीं आती।

विभिन्न स्थितियों में पुस्तक की आकृति में अन्तर
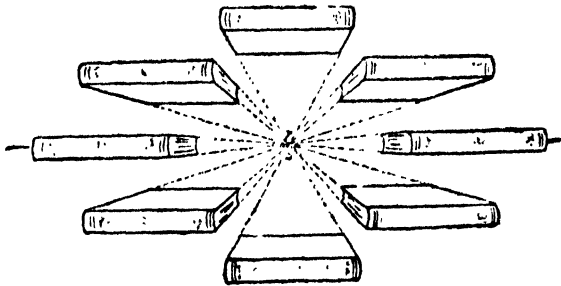
चित्र नं० ४६

विभिन्न स्थितियों में गिलास की आकृति में अन्तर
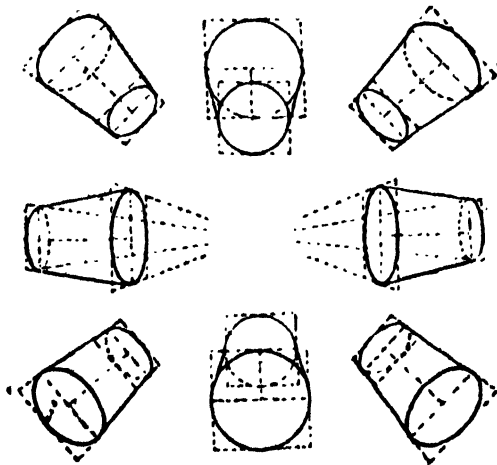
चित्र नं० ४७

किसी वस्तु-समूह के अँधेरा-प्रकाश अंकित करने के लिए निम्नलिखित तथ्यों का निरीक्षण करना आवश्यक है—

१. किस ओर से किस कोण पर प्रकाश पड़ रहा है ?

२. कौन सी दूसरी वस्तुएँ अमुक वस्तु पर प्रकाश फेंकती हैं ?

३. क्या वह वस्तु भी स्वयं अपने चारों ओर प्रकाश फेंकती है ?

४. वस्तु का स्थानीय रंग क्या है ? उसमें हल्कापन है या गहरापन ?

अँधेरा-प्रकाश तथा छाया दिखाने में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अँधेरे की गहराई प्रकाश की तीव्रता पर निर्भर है और छाया की गहराई अँधेरे की गहराई से सदैव तीव्र होगी। खड़े धरातलों में अंधेरे की रेखाओं का प्रवाह (Strokes) लाम्बिक, पड़े धरातलों का क्षितिजाकार और तिरछे धरातलों में तिरछा उनकी सीमा-रेखा के समानान्तर होना चाहिए।

प्रकाश की किरणों के कम या अधिक तिरछी होने के साथ-साथ वस्तु की छाया छोटी और बड़ी होती है। असमतल धरातलों में अंधेरे की रेखाओं का प्रवाह असम होता है और एक दूसरे को काटती हुई तिरछी रेखाओं द्वारा दिखाया जाता है। वस्तु की छाया, क्षितिजीय, लम्बवत्, झुके हुए और गोलाकार तलों पर भिन्न २ प्रकार से पड़ेगी। जब किसी वस्तु की छाया काटते हुए कई विभिन्न तलों पर, उदाहरण के लिए एक क्षितजीय, दूसरे लम्बवत तीसरे झुके-हुए पड़ती है, उस दशा में छाया बराबर एक तल से दूसरे तल पर होकर जाती है और तलों की दिशा में परिवर्तन होने के साथ-साथ परिवर्तित होती है। सामने दिया हुआ चित्र नं० ४८ इन बातों का सुन्दर उदाहरण है।
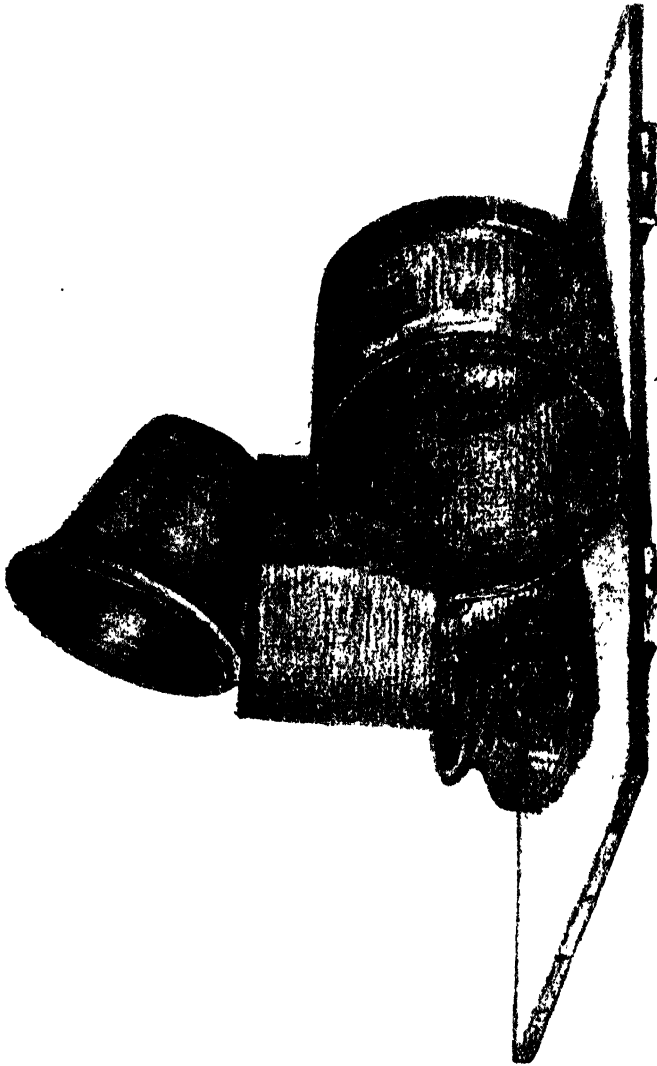
चित्र नं० ४८

२२—मानव-चित्रण

नव-चित्रण पर आने से पूर्व मानव अंग-सम्बन्धी बातों से परिचय होना आवश्यक है। व्यवहार में इनका अभ्यास प्रथम मानव-रेखाचित्रों से तथा बाद में मिट्टी के 'प्लास्टर कास्ट्स' और जीवित आकृतियों से किया जाता है। यहाँ सुविधा के लिए संक्षेप में विचार किया जाता है; क्योंकि सीमित परिच्छेदों में इस प्रकार के कार्य के विषय में विस्तार से नहीं लिखा जा सकता।

मानव-शरीर के अनुपात

शरीर के नाप में बहुमत है। परन्तु साधारण रूप से आधुनिक काल में ७॥ इकाइयों का नाप प्रचलित है, जिसमें सिर से ठोड़ी तक एक इकाई मान कर शरीर की ऊँचाई को ७॥ भागों में बाँटा जाता है। यह चित्र नं० ४६ अ से स्पष्ट है।

सिर से नाभि का अन्तर ३ भाग होता है। कंधे से कोहनी तक १½ भाग और कोहनी नाभि तक मानी जाती है। सिर से लेकर ठोड़ी तक की ऊँचाई में—सिर से आँख तक ½ भाग; सिर से मस्तक तक ¼ भाग; आँख से नथुना ¼ भाग; और नथुने से ठोड़ी ¼ भाग ली जाती है। नथुने से ठोड़ी तक के भाग को यदि फिर ३ बराबर भागों में विभाजित किया जाय, तो होंठ के बीच की रेखा तक ⅓ भाग और ठोड़ी की ऊँचाई ⅓ भाग होती है। (चित्र नं० ४६ ब)

चौड़ाई में कान से कान तक की दूरी को ५ बराबर भागों में विभाजित करने से कान के छिद्र से आँख १ भाग; प्रत्येक आँख की चौड़ाई १ भाग तथा नाक १ भाग ली जाती है (चित्र नं० ४६ स)
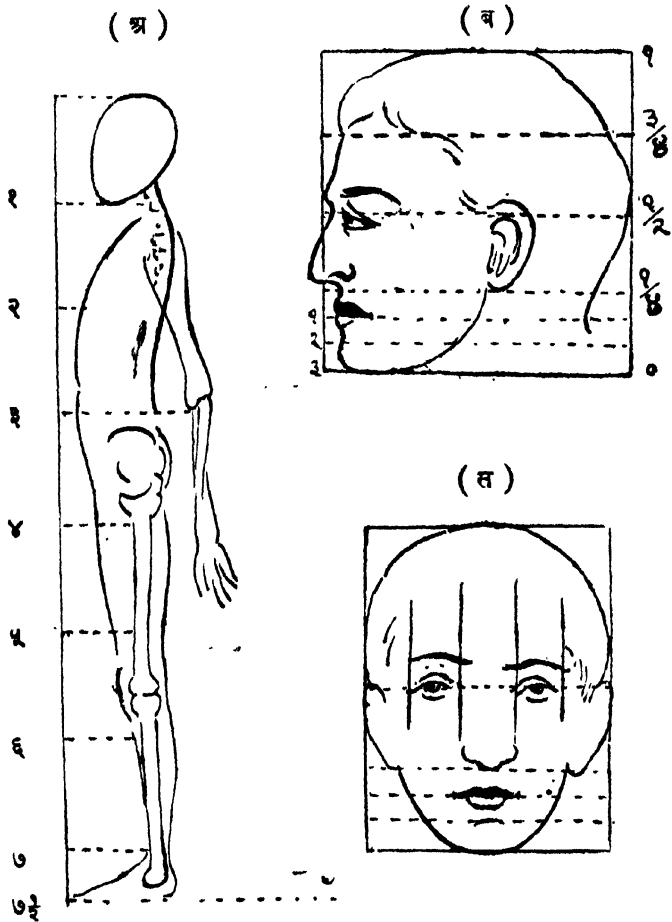
चित्र नं० ४६

एक कंधे से दूसरे कंधे तक का अन्तर २ इकाई और कमर १ इकाई के बराबर लेते हैं। ये नाप साधारण मनुष्य के हैं। बच्चों का नाप परिवर्तित होता रहता है। इसलिए कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। उनका नाप ४ भाग से लेकर अवस्थानुसार बढ़ता रहता है।

शरीर का गठन चित्रकार के निरीक्षण की वस्तु है। होठों की रचना में सब से स्पष्ट रेखा होठों के बीच की मानी जाती है। यह बहुधा सीधी होती है, परन्तु होठों की क्रियाशीलता के कारण इसकी स्थिति भी बदलती रहती है। नीचे के होठ की लम्बाई ऊपर के होठ से कुछ कम और मोटाई उससे कुछ अधिक रखी जाती है। होठों के नीचे की छाया और ठोड़ी की सीमा-रेखा मुख-रचना की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। कान की सीमा-रेखा में स्पष्ट रूप से सरल रेखाओं के पाँच जोड़ होते हैं। इसी प्रकार आँखों की रचना पुतली की स्थिति और आँखों के डेलों की रचना अगणित परि-स्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। पैर और हाथों की रचना एक विशेष अनुपात लिए हुए होती है।

मानव-चित्रण वस्तु-चित्रण की तरह पैंसिल, क्रैउन, पैस्टल, आइल और वाटर कलर सभी माध्यमों में किया जा सकता है।

आरंभ में अभ्यास के लिए अपने से बड़े चित्रकारों के चित्रों की नक़ल करना आवश्यक है।

चलते-फिरते मनुष्यों का चित्रण करने में चंचल भाग को तुरन्त और जो अंग स्थिर रहते हैं जैसे माथा, हाथ आदि को बाद में चित्रित करना सुविधाजनक होगा।

मनुष्यों के ढाँचे का चाहे मनुष्य चलता फिरता हो या बैठा हो, ध्यान रखना आवश्यक है।

अंकन करने के पश्चात प्रधान रेखाओं को सुन्दर और स्पष्ट बनाकर अँधेरा-प्रकाश देना उचित है।

वाटर कलर में चित्रण वाटर कलर में चित्रण आरम्भ करने से पूर्व यह देख लेना आवश्यक है कि कागज़ पर पैंसिल की गहरी खरोंचे तो नहीं हैं या रबर का अत्यधिक प्रयोग तो नहीं किया गया, जिससे कागज़ का धरातल खराब हो गया हो।

वाटर कलर में रंगों का प्रयोग निश्चित और स्वतन्त्र होना चाहिए। आरम्भ करने से पूर्व यह निश्चित कर लेना चाहिए कि हम क्या करना चाहते हैं। प्रायः होता यह है कि एक निश्चित स्कीम को आरम्भ करके उसे परिवर्तित करने में बल भद्दे या मैले हो जाते हैं।

शरीर का रंग बनाने के लिए Crimson Lake (कृमिदाना) Vermilion (सिंदूर), Burnt Sienna (हिरमिची रंग) और Yellow Ochre (पीत, पीला रंग) को सफेद रंग के साथ मिलाया जाता है सबसे कम कृमिदाना उससे अधिक सिंदूर उससे अधिक हिरमिची का रंग उससे अधिक पीला रंग और सबसे अधिक सफेद रंग मिलाना चाहिए। यदि गोरा रंग बनाना हो तो सफेद रंग की मात्रा और भी अधिक कर देनी चाहिए। काले शरीर का रंग बनाने के लिए हिरमिची के रंग की मात्रा कुछ अधिक कर देनी चाहिए और कुछ हरा रंग भी मिला देना चाहिए इससे भी अधिक काला बनाने के लिए Vandyke Brown (गहरा काला बादामी) मिलाना चाहिए। प्रयत्न यही होना चाहिए जहाँ तक हो रंग वास्तविक रंग के बिल्कुल समान हो।

बालों के रंग के लिए केवल काले रंग का आलेपन ठीक नहीं होता। बालों का रंग बनाने में Indigo (नीलबड़ी), हिरमिची का रंग, कूमिदाना, Prussion Blue (आसमानी नीला) और Lamp Black (काजल) मिश्रित किए जाते हैं। बालों के किनारे कहीं-कहीं नीलबड़ी और हिरमिची रंग या नीलबड़ी और सफेद या नीलबड़ी में जरा सा कूमिदाना मिलाकर लगाने से उनमें कोमलता का समावेश किया जा सकता है। इधर-उधर के बालों में यत्र-तत्र भिन्न-भिन्न रंगों की रेखाएँ खींची जा सकती है।

भौं को हिरमिची रंग से बना कर बाद में नीलबड़ी के टच देने चाहिए या हिरमिची रंग और नीलबड़ी को मिलाकर ही सम्पूर्ण भौं का चित्रण करना चाहिए। भौंहों के किनारे पर नीलबड़ी का टच देने से इधर-उधर कोमलता और उभार उत्पन्न हो जायगा।

नेत्रों में भी नीलबड़ी और हिरमिची रंग मिश्रित करके पलक का रंग बनाना चाहिए। नीचे के पलक में ऊपर के पलक की अपेक्षा बहुत कम गहरा रंग देना चाहिए। आँख के दोनों कोनों की ऊपर और नीचे की रेखाओं में गहरा रंग लगाना चाहिए और पुतली के दोनों ओर कोए के हिस्से के बीच में थोड़ा सफेद रंग का टच देना चाहिए। ऐसा करने से आँखों में गुलाई दिखाई देने लगेगी। कोयों के कोनों में माँस का भाग दिखाने के लिए वरमिलन या (सिंदूर) का टच लगा देना चाहिए।

पुतली भी नीलबड़ी और हिरमिची के रंग के मिश्रण से बनानी चाहिए। पुतली में एक ओर गुलाई की रेखा से थोड़ा भीतर गहरा

रंग देने और बीच में सफेद का एक हलका टच देने से उसमें प्राण मालूम होने लगेंगे—नेत्र पत्थर के समान प्रतीत नहीं होंगे।

नाक की जड़ के दोनों ओर कुछ अँधेरा दिखाना चाहिए। नासिका में माँस का अधिक भाग होने के कारण उसकी रेखाएँ हलके रंग में हलके हाथ से खींचनी चाहिए। नथुने की हलकी सी रेखा खींचने के उपरान्त नाक के छेदों को कुछ गहरा कर देना चाहिए।

होठ का रंग विभिन्न प्रकार से बनाया जाता है। प्रायः ऊपर के होठ में कूमिदाना के साथ सिंदूर और हिरमिची का रंग और सिंदूर मिश्रित करके दिये जाते हैं। होठों के बीच की रेखा खींच कर गहराई के लिए इधर-उधर टच देने चाहिए। होठ के दोनों कोनों और बीच में प्रकाश देने से होठों की रचना में सुन्दरता आ जाती है।

रंग जमाना चित्र में सब जगह रंग लगाकर उसे मोटे रूप से पूर्ण करके पानी में डुबा देना चाहिए। ऐसा करने से कागज़ पर रंग जम जाता है। डुबाकर सुखाने के पश्चात रंग पक्का हो जाता है। अतः और कुछ परिवर्तन करना हो तो डुबाने से पहले ही करना चाहिए।

वाश देना वाश दो तरह का होता है। १—एकसा (Flat) २—क्रमिक (Graded)

एकसा वाश देने के लिए रकाबी में पर्याप्त पानी भरकर उसमें अभीष्ट रंग घोल लेना चाहिए। अभीष्ट रंग का वाश देने से पूर्व केवल पानी का एक वाश करना चाहिए। काग़ज़ पर से जब पानी की चमक दूर हो जाय, तो बोर्ड को एक ओर से कुछ तिरछा कर लेना चाहिए। बोर्ड को एक ओर से बहुत नीचा या बहुत ऊँचा नहीं रखना चाहिए। ऐसा करने से या तो रंग बह ही न सकेगा या इतनी शीघ्रता से बहेगा कि सारा रंग नीचे बह जायगा। अब एक बड़े ब्रुश से घुले हुए रंग का एकसा वाश करना चाहिए। यदि वाश ठीक नहीं हुआ तो सूखने पर पुनः वाश करना चाहिए। वाश कितना ही त्रुटिपूर्ण क्यों न हो परन्तु उसी समय उसको सुधारना ठीक नहीं।

क्रमिक वाश करने के लिए पहले गहरा रंग लगाना चाहिए और इसी को पानी के ब्रुश से नीचे तक हलका कर लेना चाहिए। बार-बार उसी प्रकार वाश करने से वाश क्रमिक हो जायगा। प्रत्येक अगले ब्रुश के लिए रंग में थोड़ा-थोड़ा पानी और मिला कर वाश करने से भी क्रमिक वाश किया जाता है।

गहरे से हलके की ओर वाश करना, हलके से गहरे की ओर वाश करने की अपेक्षा सरल होता है। इसका ढंग पहले के ठीक विपरीत होगा। इसमें पानी के वाश से आरम्भ करके रंग के उत्तरोत्तर गहरे बल (Tone) का प्रयोग करना चाहिए। विभिन्न बलों के रंग अलग घोल कर भी इस प्रकार का वाश किया जा सकता है।

यदि वाश करने में धब्बे आगए हैं, तो चित्र को सूखने पर पानी में डुबा देना चाहिए, तत्पश्चात उसे बोर्ड पर रखना चाहिए। ऐसा करने से जहाँ-जहाँ गहरा रंग होगा, धुलकर एकसा होकर कोमल हो जायगा। यदि अब भी वाश में सुधार नहीं हुआ तो सूखने पर पुनः करना चाहिए।

चित्र में वाश देने का अर्थ यही होता है कि सामूहिक रूप में चित्र में जिस रंग का आधिक्य हो उसका आभास दिया जाय। प्रायः सूर्योदय या सूर्यास्त या चन्द्रिका के समय समस्त वस्तुओं पर एकसा प्रभाव पड़ता है। विभिन्न वस्तुओं के भिन्न-भिन्न रंग होते हुए भी वे लालिमा, पीलापन या सफेदी लिए दिखाई पड़ते हैं।

(चित्र नं० ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, और ५६) और ऐसे ही अन्य चित्रों से शरीर की सीमा-रेखाओं और उपर्युक्त चित्रण-पद्धति का आरंभिक अभ्यास लाभदायक सिद्ध होगा।

इसके उपरान्त मनुष्यों को बिठाकर या चुपचाप कि उनको ज्ञात न हो, चित्रण करने का अभ्यास करना उचित है। मनुष्यों को विशेष रूप से बिठा कर अंकन करने में मनुष्य का रूप-अंकन तो हो जाता है, परंतु उसका स्वभाव-चित्रण नहीं होता।
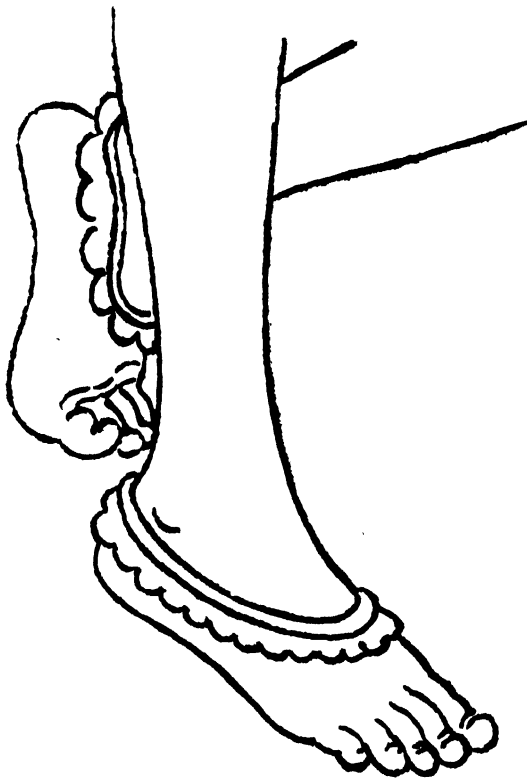
चित्र नं० ५०

चित्र नं० ५१

चित्र नं० ५२

चित्र नं० ५३

चित्र नं० ५४

चित्र नं० ५५

चित्र नं० ५६

२३—प्रकृति-चित्रण

थार्थ-चित्रण का यह भाग पहले दो भागों की अपेक्षा अधिक व्यापक और विस्तृत है। इसमें स्थल, आकाश, पेड़, पौदे, पक्षी, मनुष्य तथा सभी प्रकार की वस्तुएँ जो जगत का अंग हैं—आ जाती हैं।

प्रकृति-चित्रण के विषय जितने सरल होंगे उतना ही अच्छा है। विषय-चयन में शीघ्रता की आवश्यकता नहीं। चुनी गई स्थिति, स्थान और वस्तुएँ सुन्दर, संयोजित और सरल होनी चाहिएँ। अपने विषय का खूब विश्लेषण करके प्रकाश की दिशा तथा रंगों का विभाजन, सम्पूर्ण दृश्य का संयोजन, छन्द-गति, संगति और विरोध आदि के विषय में अपने विचार निश्चय कर लेने चाहिएं।

छन्द-गति और संगति* चित्रकला में शान्ति और आनन्द प्रदान करते हैं। विरोध आश्चर्य और भाव (Emotion) उत्पन्न कराता है। छन्द-गति केवल सीमारेखा पर निर्भर है। संगति और विरोध, रेखा और रंग दोनों पर निर्भर हैं। यदि चित्र में कोमल रंग है तो कठोर रंगों का प्रयोग विरोध उत्पन्न करेगा और यह प्रकृति में सबसे अधिक मिलता है।

* डिज़ाइन और पोस्टर चित्रण के अध्याय में पृष्ठ १७३ से १७७ तक देखिये।

स्मरण रहे कि बहुत सी वस्तुओं में जिनकी यथार्थ अनुकृति चित्रकार नहीं दे सकता उनमें आकाश और मेघ हैं।

मेघ विभिन्न और विचित्र आकारों के होते हैं। इनमें कुछ की सीमा रेखाएँ बहुत स्पष्ट होती हैं। कुछ पत्थर की शिलाओं की भाँति फैले हुए और कुछ रुई के गट्ठरों की भाँति दिखाई देते हैं। (चित्र नं० ५७, ५८ और ५६)
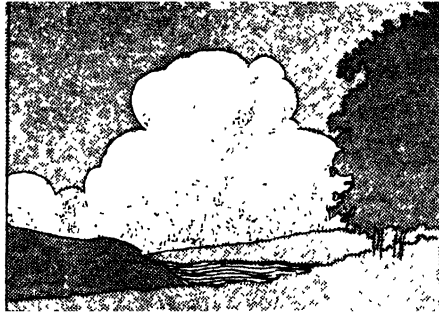
ये बादल जिनकी सीमा रेखाएँ अधिक स्पष्ट होती हैं
चित्र नं० ५७
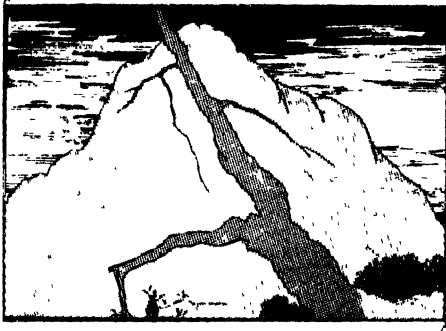
पत्थर की शिलाओं के समान
चित्र नं० ५८

रुई के गट्ठरों के समान
चित्र नं० ५६
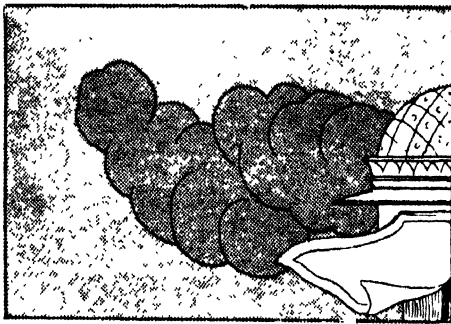
घास के मैदान दूर से देखने पर धूप में पीलापन लिए हुए हरे या बिल्कुल पीले दिखाई देते हैं।

घास के मैदानों पर जहाँ बादलों की छाया पड़ती है, वहाँ पीले या पीलापन लिए हुए हरे रंग के बल कुछ धुँधला होने के कारण हल्के रंग से दिखाए जाते हैं।

पौदों के गुच्छे प्रकाश और अँधेरा दिखाने में बहुत सहायता देते हैं परन्तु प्रकाश-अंधेरे के ये क्षेत्र निश्चित नहीं किए जा सकते।

कभी-कभी बल ठीक करने के लिए अपने निरीक्षण से सहायता लेनी पड़ती है।

छोटे-छोटे पौदों और झाड़ियों आदि के चित्रण में एक-एक पत्ती या एक-एक डाल निकालना ठीक नहीं होता। विभिन्न रंगों के सधे हुए टच देने से ही फूल-पत्ती बन जाते हैं। (चित्र नं० ६०)

पौदों के चित्रण में निम्नलिखित बातों का समावेश होना आवश्यक है—

(१) ढाँचे का सही-सही ज्ञान।

(२) विभिन्न प्रकार के पेड़ों के गुच्छों की सही-सही सीमा रेखाएँ।

एक ग्रामीण दृश्य

चित्र नं० ६०

(३) गुच्छों के स्थानीय रंग और प्रकाश-अँधेरे को ध्यान में रखते हुए पेड़ में स्वाभाविक बल देना।
(४) पेड़ों की छायाएँ और उनके किनारे।
(५) उनके यथार्थ रंग।

प्रकृति-चित्रण में पहाड़, बरफ, पानी, बड़ी अच्छी छन्द-गति पैदा करते हैं। इनके साथ-साथ इनका विरोध जैसे छोडे पत्थर के टुकड़े, पेड़ और जल-थल एक दृश्य के लिए आवश्यक हैं। श्री भवानीचरण गुई का चित्र केदारनाथ, पहाड़ की असमतल भूमि और पत्थरों की अपेक्षा बरफ की सख्ती और कठोरता और पिघलते हुए बरफ की नर्मता दो तीन मनुष्यों की छोटी-छोटी आकृति संयोजन और छन्द-गति के विशेष अच्छे उदाहरण हैं। (चित्र नं० ६१)

किसी वस्तु के जल में प्रतिबिम्ब वस्तु की आकृति पर ही निर्भर नहीं, उनका बड़ा-छोटा सीधा और तिरछा और टूटा हुआ प्रतिबिम्ब सूर्य की किरणों के कोण पानी की स्थिरता, गहराई और चंचलता पर बहुत निर्भर है।

स्थिर जल के प्रतिबिम्ब अधिक स्पष्ट होंगे जबकि बहते हुए जल के प्रतिबिम्ब अस्पष्ट और टूटे हुए होंगे।

पृष्ठ १७० पर दिए गए चित्र नं० ६२ ताजमहल अपनी छोटी बड़ी गुमटियों पर घमण्ड करता हुआ अव्यवस्थित छन्द-गति और स्थिर जल के प्रतिबिम्ब का अच्छा उदाहरण है।

केदारनाथ] चित्र नं० ६१ [भवानीचरण गुई

प्रतिबिम्ब] [चित्र नं० ६२

दृश्य-अंकन करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है —

१—पास की वस्तु बड़ी और दूर की वस्तु छोटी दिखाई देती है।

२—आरम्भिक अवस्था में नाप लेने चाहिएँ पर नापों के ग़लत सही होने की जाँच दृश्या के नियमों से भी कर लेनी चाहिए।

३—रेखांकन में केवल सामान्य रूपरेखा ही बनानी चाहिए। प्रत्येक छोटी छोटी बात पर ध्यान देना आवश्यक नहीं होता।

४—परिवर्तित होने वाली वस्तुओं के रेखांकन पहले करने चाहिएं।

५—प्रकाश और अंधेरे का प्रभाव पास की वस्तुओं के लिए तेज और दूर की वस्तुओं के लिए हलका और धुँधला दिखाई देता है।

६—सूर्य के तीव्र प्रकाश में छायाओं के किनारे धुँधले प्रकाश की अपेक्षा अधिक निश्चित और स्पष्ट होते हैं।

७—स्वच्छ आकाश क्षितिज के निकट ऊपर के आकाश से कुछ हलका होता है।

८—विस्तृत आकाश को धीरे-धीरे मठ के रूप में ले जाते हुए चित्रित किया जाता है।

९—मेघों के चित्रण में रंग, बल और आकाश की विभिन्नता उनकी अस्थिरता आदि का ध्यान रखना आवश्यक है।

१०—आकाश के धुँधले प्रभाव को ब्रुश से रगड़ कर प्राप्त किया जाता है।

२४—डिज़ाइन और पोस्टर चित्रण

डिज़ाइन आलंकारिक चित्रण या डिज़ाइन रेखाओं का ऐसा संगठन है जिससे अलंकृत इकाई का बोध हो। अधिक व्यापक अर्थ में इसको हम अपनी सूक्ष्म भावनाओं का आलंकारिक रूप कह सकते हैं।

आलंकारिक चित्रण एक स्थान को विभिन्न भागों में—विभिन्न आकारों और नापों में—विभाजित करने से सम्बन्ध रखता है।

संयोजन तभी अच्छा कहा जा सकता है जब उसमें अच्छा अनुपात हो, ठीक स्थल विभाजन हो, उचित व्यवस्था हो और अच्छी रचना हो।

डिज़ाइन के तीन मुख्य नियम है—(१) संतुलन (Balance), (२) गति (Rhythm) और (३) संगति (Harmony)

संतुलन संतुलन से अभिप्राय शक्ति के समान करने से है। यह संतुलन दो प्रकार का होता है—

(१) व्यवस्थित संतुलन (Formal Balance)।

(२) अव्यवस्थित संतुलन (Informal Balance)।

व्यवस्थित संतुलन इस के अनुसार समान वजनों को केन्द्र से समान अन्तर पर सजाया जाता है। इस प्रकार के संतुलन में Symmetry प्रधान होती है। (चित्र नं० ६३) इस प्रकार वस्तुओं का संतुलन तो बना रहता है पर चित्र में एक-

रसता आ जाती है। सब कुछ एकसा और नियमित होने के कारण चित्र शक्तिहीन प्रतीत होता है।

व्यवस्थित संतुलन
चित्र नं० ६३

अव्यवस्थित संतुलन व्यवस्थित संतुलन समान वज़नों की केन्द्र से समान अंतर पर नहीं सजाया जाता बल्कि असमान वज़नों को केन्द्र से असमान अन्तर पर रखा जाता है। वज़न जितना अधिक भारी होता है उतना ही केन्द्र के निकट और जितना हल्का होता है उतना ही केन्द्र से दूर रखा जाता है। (चित्र नं० ६४)

इस प्रकार के संतुलन में विभिन्नता की पूरी गुञ्जाइश रहती है। अतः इसका प्रभाव व्यवस्थित संतुलन की भाँति एकसा न होकर विभिन्नता लिए हुए होता है।

अव्यवस्थित संतुलन
चित्र नं० ६४

छन्द-गति सीमित अर्थ में छन्द-गति का अर्थ होता है—सम-प्रवाह्। संगीत में इसे स्वर के उतार चढ़ाव का निश्चित क्रम पर आना कह सकते हैं। तालाब के किनारे तरंगों का उत्पन्न हो होकर विलीन होते रहना स्थान-सम्बन्धी छन्द-गति का उदाहरण है। इन तरंगों के रूप में परिवर्तित होती हुई रेखाएँ हमें दिखाई देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है तरंगों का उत्थान और लय मानो छन्द-गति के साथ चल रहा है। ध्यान से देखने पर तरंगों की गति नृत्य की थाप की तरह एक सम के अनुसार चलती दिखाई देती है। एक के बाद एक जो रेखाएँ बनती हैं वे सब अनुरूप होती हैं। उन पर प्रकाश का प्रभाव भी एकसा होता है इस प्रकार इन तरंगों में एक प्रकार का क्रमिक सम्बन्ध सा स्थापित हो जाता है। यह क्रमिक अन्तर सम्बन्ध छन्द-गति कहलाता है।

छन्द-गति स्थूल रूप से दो प्रकार की होती हैं। १—व्यवस्थित छन्द-गति (Formal Rhythm) और २—अव्यवस्थित छन्द-गति (Informal Rhythm)।

व्यवस्थित छन्द-गति यदि एक इकाई की निश्चित क्रम से पुनरावृति करें तो व्यवस्थित छन्द-गति प्राप्त हो जाती है। इसका प्रयोग किनारी और फर्श के आलंकारिक चित्रण में किया जाता है। एक इकाई की या दो विभिन्न इकाइयों से मिलकर बनी एक बड़ी इकाई की लम्बाई में या लम्बाई और चौड़ाई दोनों ओर पुनरावृति करने से किनारी और फर्श के डिज़ाइन में व्यवस्थित छन्द-गति का समावेश हो जाता है। (चित्र नं० ६५ अ, ब, स)

अ

ब

स
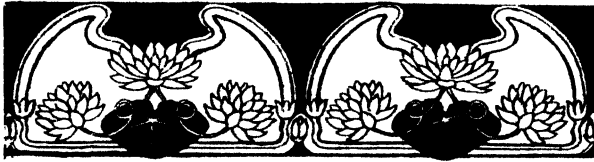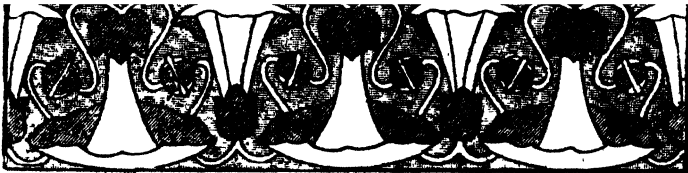
व्यवस्थित छन्द-गति

चित्र नं० ६५

अव्यवस्थित छन्द-गति इसमें इकाई की पुनरावृत्ति तो होती है, परन्तु निश्चित क्रम से नहीं होती। इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि एक ही प्रकार की इकाइयाँ पुनरावृत्ति में काम लाई जायें परन्तु इसमें रेखाओं और आकाश की पुनरावृत्ति भिन्नता लिए होती है। एक ही प्रकार की रेखाओं की गति का अनुकरण करने में जो एक प्रकार की नीरसता की सम्भावना बनी रहती है वह विभिन्नता के समावेश से इसमें नहीं आ पाती। इस प्रकार की छन्द-गति अभ्यास तथा अनुभव से ही आ सकती है। (चित्र नं० ६६ अ और ब)। अजन्ता के डिजाइन भी अव्यवस्थित छन्द-गति के सुन्दर उदाहरण हैं।

संगति रेखाओं की संगति से अभिप्राय उद्देश्य की उचित पूर्ति और सम्पूर्ण भागों के संगठन से है। रंगों की संगति से अभिप्राय रंगों के संतुलन से है।

नियमों द्वारा रंगों की संगतियों का क्षेत्र सीमित नहीं किया जा सकता है। लेखक के अपने अनुभव के आधार पर निम्न-लिखित रंगों के वर्ग अच्छी संगति उत्पन्न करते हैं :—

१. White (सफ़ेद), Blue (नीला), Grays (भूरे रंग)।

२. Orange (नारंगी). Burnt Sienna (हिरमिची रंग), Black (काला)।

३. Cobalt Blue (एक प्रकार का नीला रंग), Mauve (बैंजनी), Naples Yellow (नीबुआ पीला)।

अ

ब
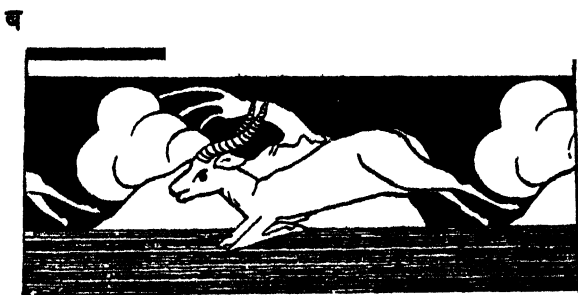
अव्यवस्थित छन्द-गति

चित्र नं० ६६

४. Vermilion (सिंदूर), White (सफ़ेद), Vandyke Brown (गहरा काला बादामी)।

५. Light Chrome Green (क्रोमियम धातु मिला हलका हरा), Indian Red (गेरू), Burnt Sienna (हिरमिची रंग)।

६. Vermilion (सिंदूर), Black (काला), Orange (नारंगी)।

७. Geranium Lake (जैरेनियम पौदे के समान हरा), Mauve (बैंजनी), Emerald Green (मरकत मणि के समान हरा)।

८. Violet (फ़ालसई), Dark Chrome Yellow (गहरा क्रोमियम धातु मिला पीला), Raw Sienna (पीला और हरापन लिए हुए हिरमिची रंग)।

९. Burnt Umber (बादामी काला), Gray (भूरा), Yellow Ochre (गेरू मिला पीला)।

किसी भी रंग में भूरा या काला मिलाकर एक ही रंग की हल्की गहरी संगति प्राप्त की जा सकती है। डिज़ाइन में इस प्रकार की संगतियों के प्रयोग के समय यह आवश्यक है कि अधिक चटक रंग का प्रयोग छोटे स्थल पर और कम चटक रंगो का प्रयोग उसकी अपेक्षा बड़े स्थल में किया जाय।

डिज़ाइन रेखाओं के सूक्ष्म संयोजन के रूप में या प्रकृति के आलंकारिक आकार के रूप में विभाजित किया जा सकता है।

कला के विद्यार्थी के आरम्भिक कार्य को सुविधापूर्ण बनाने के लिए यहाँ केवल अलंकृत-डिज़ाइन का ही समावेश किया गया है। इसका उद्देश्य मौलिक नमूनों की रचना खोज करना है क्योंकि वे आत्मा की उपज होते हैं। किसी भी सुन्दर कलाकृति में कल्पना, स्वतन्त्रता और उन्मुक्तता आवश्यक होते हैं।

यहाँ कुछ नमूने कल्पना के विकास के लिए दिए जाते हैं। इनकी अनुकृति करके उनसे प्रेरणा लेकर अपने विचार को नवीन रूप में संयोजित करना चाहिए।

डिज़ाइनों का वर्गीकरण, जिस कार्य के लिए वे प्रयुक्त होते हैं, उसके आधार पर भी किया जाता है। जैसे —

दीवारों के लिए
साड़ियों के लिए
तकियों के लिए
टाइटिल पेज के लिए
छत के लिए
दरवाज़ों के लिए
फर्श के लिए
कालीन के लिए
पर्दों के लिए
छींटों के लिए
लेबिलों आदि के लिए

स्टैंसिल में किनारे के लिए डिज़ाइन
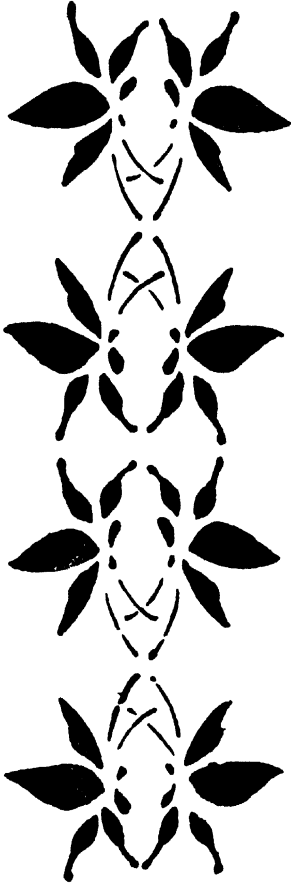
साड़ी— बौर्डर के लिए
चित्र नं० ६७

दीवारों के लिए बौर्डर डिज़ाइन
चित्र नं० ६८
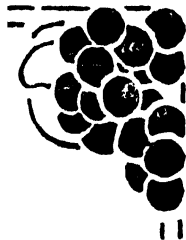
स्टैंसिल डिज़ाइन

तकिये के गिलाफ़ के लिए
चित्र नं० ६६
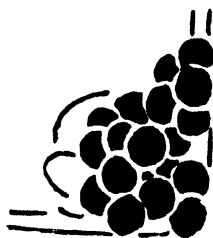
वर्गाकार और गोलाकार गद्दी आदि के लिए डिज़ाइन

चित्र नं० ७०
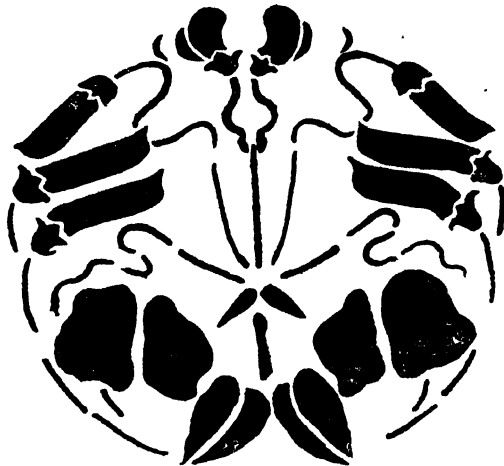
चित्र नं० ७१
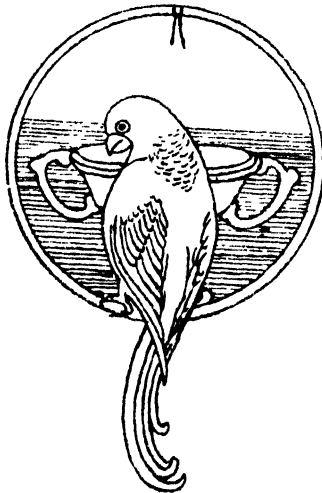
अनेक वस्तुओं के लिए आलंकारिक इकाई चित्र नं० ७२

ज्यामितीय साड़ी डिज़ाइन चित्र नं० ७३
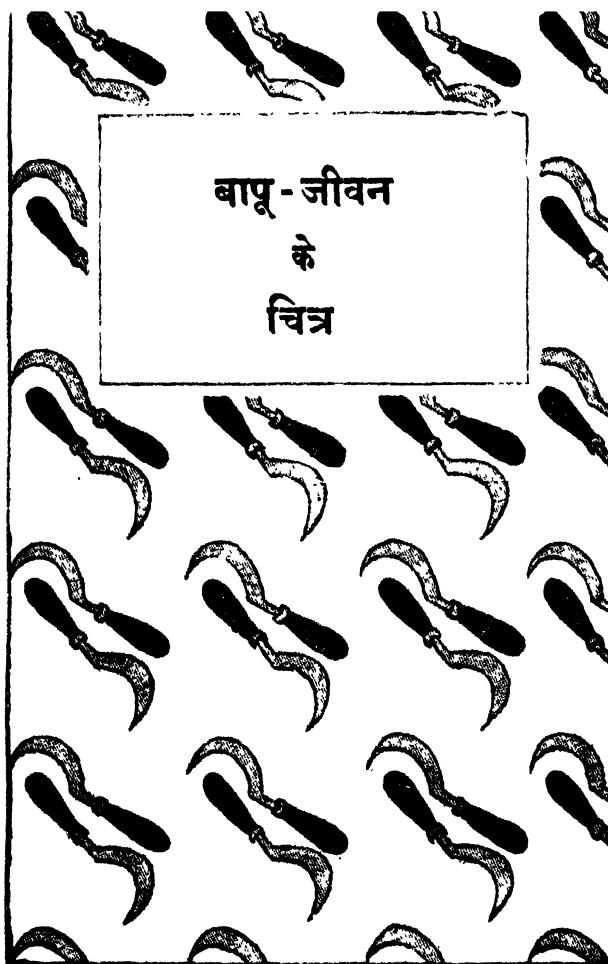
हँसियों (Sickles) के आधार पर किताब के कवर के लिए डिज़ाइन
चित्र नं० ७४
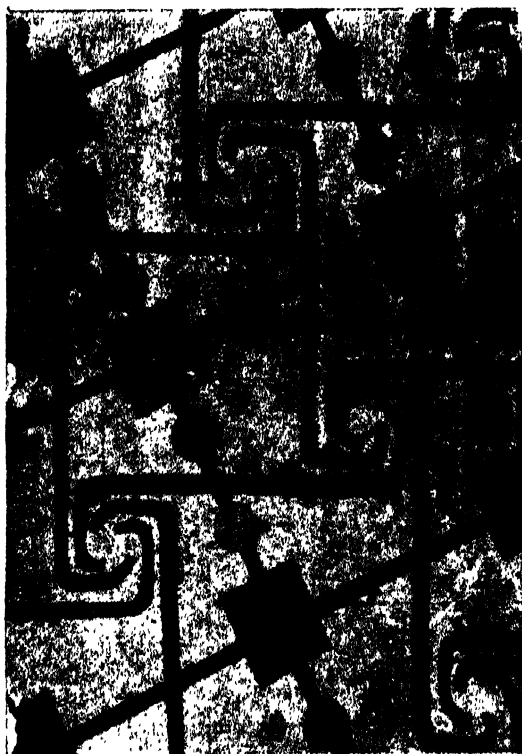
पायदान आदि के लिए डिज़ाइन

चित्र नं० ७५

फ़र्श आदि के लिए डिज़ाइन
चित्र नं० ७६
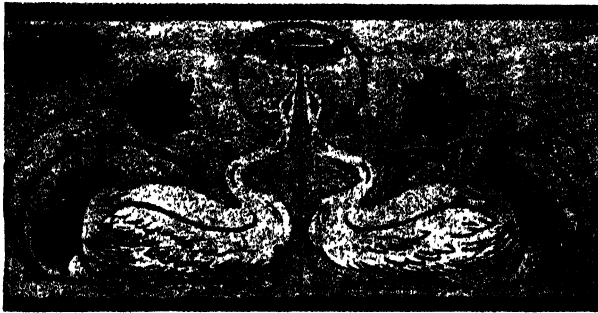
दीवारों के लिए बौर्डर डिज़ाइन
चित्र नं० ७७
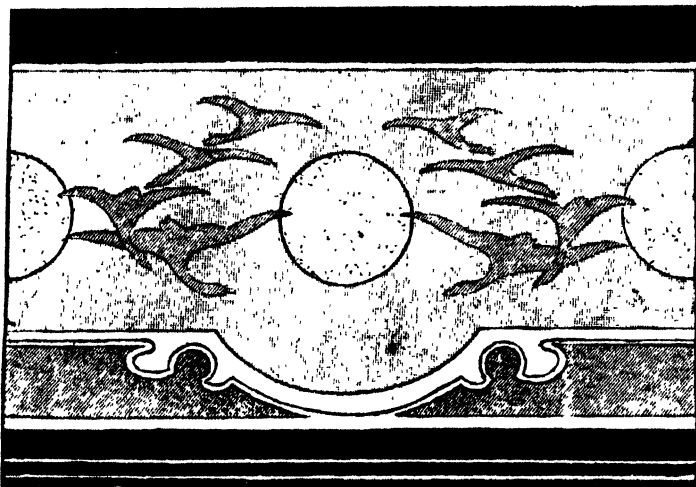
साड़ी के लिए बौर्डर डिज़ाइन
चित्र नं० ७८
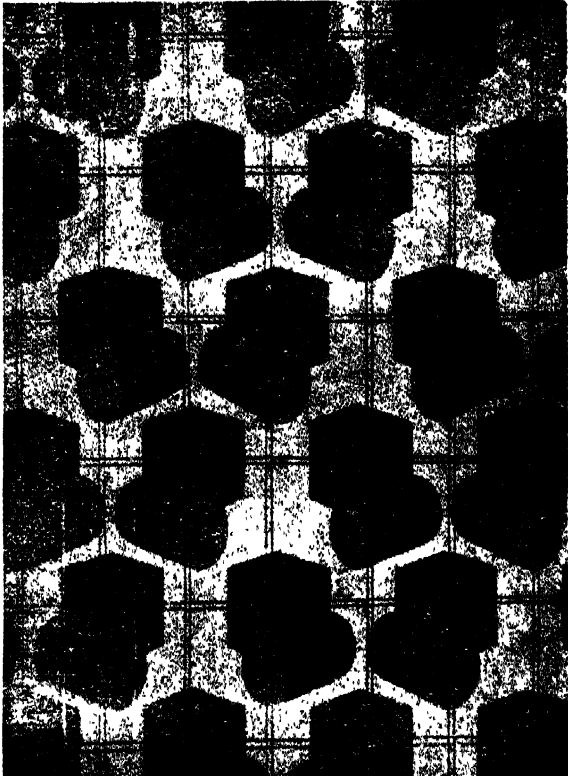
फर्श या छींट के लिए डिज़ाइन

चित्र नं० ७६

चित्र नं० ८०
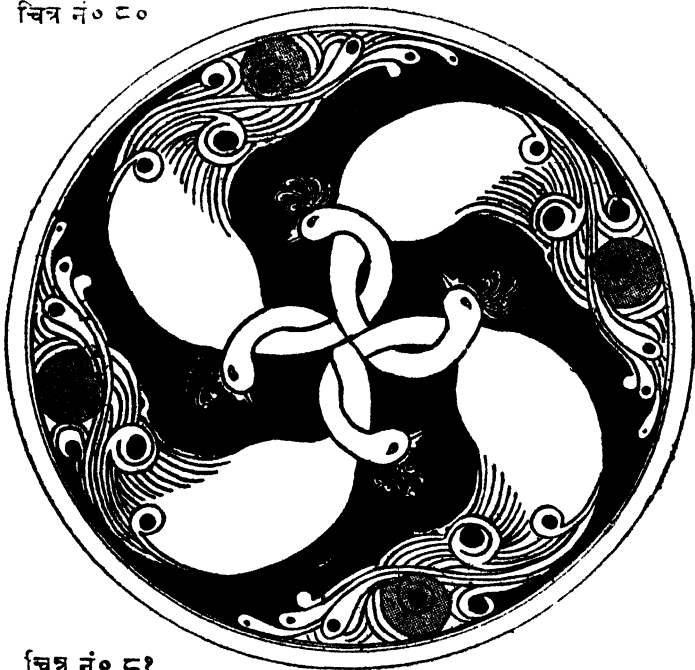
चित्र नं० ८१

छत और दीवार के बौर्डर के लिए डिज़ाइन

छींट के लिए डिज़ाइन
चित्र नं० ८२

पर्दे के लिए डिज़ाइन
चित्र नं० ८३
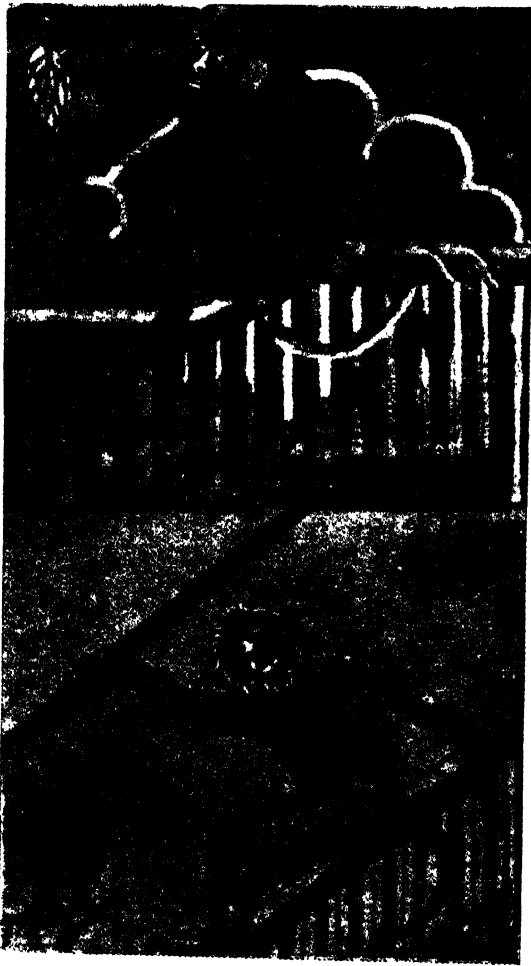
एक पैनल डिज़ाइन   चित्र नं० ८४
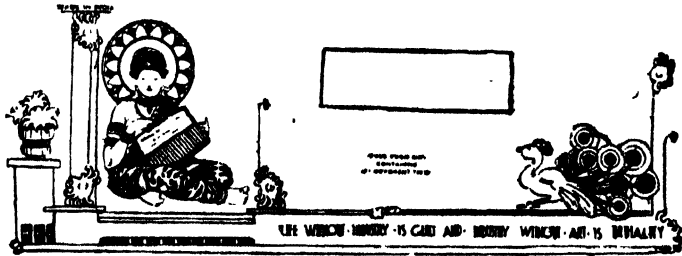
लेबिल डिज़ाइन — चित्र नं० ८५
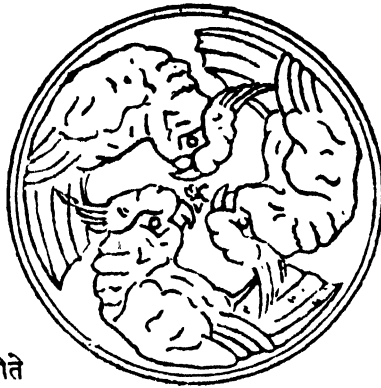
गोलाकार में तोते — चित्र नं० ८६
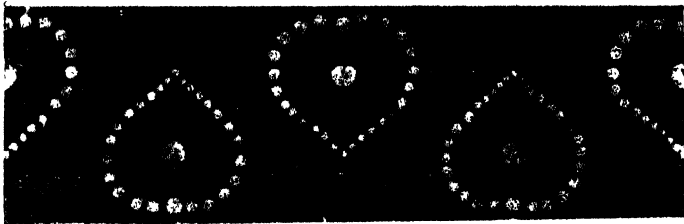
लैस बौर्डर — चित्र नं० ८७

पर्दे के लिए डिजाइन
चित्र नं० ८८

पोस्टर किसी वस्तु स्थान या विचार को चित्र में इस प्रकार दिखाया जाय कि वह दूर से ही हमारी दृष्टि को आकर्षित करले—यही पोस्टर की कला है।

पोस्टर बनाने के कुछ आवश्यक नियम—

१—पोस्टर में वस्तु स्थान, और विचार से सम्बन्धित प्रधान अंश को ही दिखाया जाता है।

२—छोटी-मोटी बारीकियों को पोस्टर में दिखाना अनावश्यक होता है।

३—पोस्टर का विषय रोचक तथा सर्व साधारण की समझ में आ सकने वाला होना चाहिए।

४—रंगों के चित्रण में सादगी और स्पष्टता होनी चाहिए।

५—पोस्टर में रंगों को बिना अँधेरा-प्रकाश दिखाए हुए समतल रूप में लगाना चाहिऐं।

६—रंगों का बल ऐसा हो जो दृष्टि को आकर्षित करे।

७—पोस्टर का शीर्षक संक्षिप्त और उसमें लिखे अक्षर साफ और मोटे होने चाहिएं।

चित्र नं० ८६ से ६२ तक विभिन्न विषयों के पोस्टरों के उदाहरण रूप प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनमें उपर्युक्त सभी बातों का समावेश हुआ है।
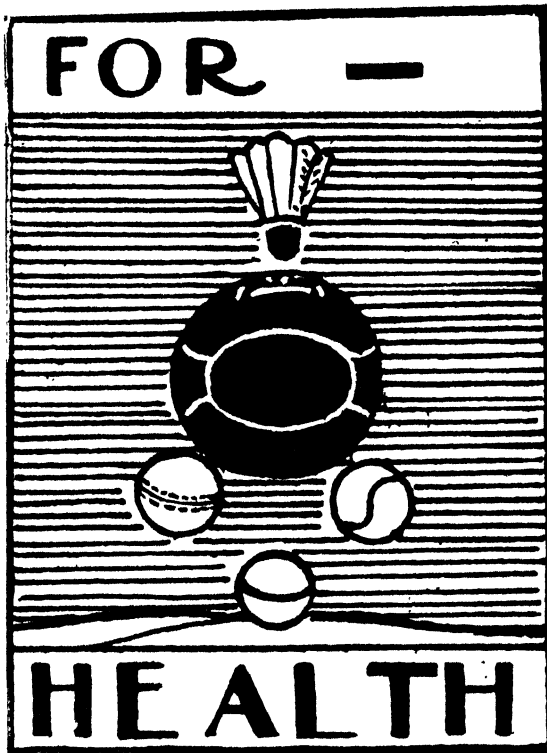
चित्र नं० ८६
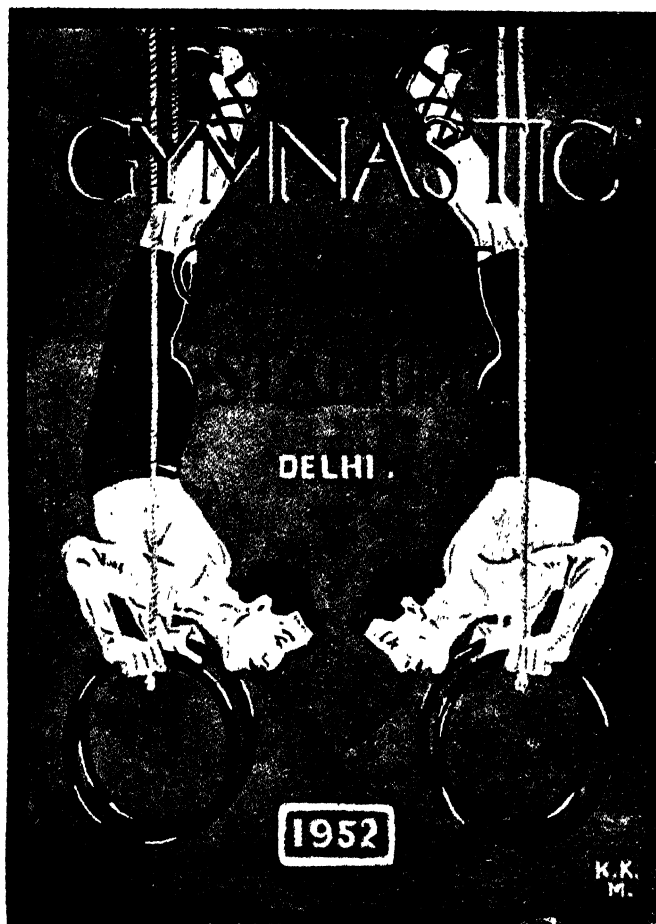
चित्र नं० ६०

चित्र नं० ६१

चित्रकार के० के० मुकरजी

चित्र नं० ६२

१५ अगस्त के अवसर पर]   [चित्र नं० ६३

२५—काल्पनिक चित्रण

ल्पनिक चित्रण चित्रात्मक संयोजन का वह भाग है जिसमें चित्रकार के भाव और अनुभूतियाँ प्रधान होती हैं। काल्पनिक चित्रण में रस प्रधान होता है। चित्रकार के लिए किसी वस्तु को देख कर उसमें तल्लीन हो जाना और अपने आपको भूल जाना यही रस है। मुद्राओं और भावों के सफलतापूर्वक चित्रण में ही काल्पनिक चित्रण की सफलता है।

काल्पनिक चित्रण के लिए तल्लीनता आवश्यक है। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है 'योगस्य कुरु कर्मणि संगम त्यक्ता धनञ्जय' अनासक्तरूप से कार्य करना ही योग है। तुलसी ने भी कहा है कि 'स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा' और स्वांतः सुखाय योग है। कला कला के लिए हो या जीवन के लिए, दोनों रूपों में वह योग साधना करता है क्योंकि कलाकार संसार का निरीक्षण करता हुआ भी लोक से अलग है। जगत की नाना वस्तुओं, व्यापारों आदि से जब तक चित्रकार का तादात्म्य नहीं होगा तब तक वह योग की अवस्था में नहीं पहुँच सकता और बिना योग की उस अवस्था में पहुँचे रस असम्भव है।

चित्रकार जो भी भाव चित्रित करना चाहता है उस समय के लिए उसे वैसा ही अनुभव करना चाहिए। हँसते हुए, नृत्य करते हुए या वध करते हुए व्यक्ति का चित्रण करने से पूर्व उसे भी अपने को हँसते हुए, नाचते हुए या वध करते हुए अनुभव करना होगा, तभी चित्र में अभीष्ट भाव आ सकेगा।

'गीता के भगवान' चित्र नं० ६४ में भाव ही प्रधान हैं। चित्र में भगवान कृष्ण अर्जुन को धर्मयुद्ध के लिए ललकार रहे हैं। उनकी भुजाओं और मुखमण्डल पर दृढ़ता, दार्शनिकता और विद्वता के भाव हैं। अर्जुन में एक हठ है यद्यपि वह भगवान के उपदेश से प्रभावित होकर बढ़ते हुए विश्वास के साथ भगवान के सम्मुख आत्मसमर्पण करता प्रतीत होता है। चित्र के ये भाव बिना तल्लीनता के कैसे आ सकते थे।

चित्र के भावांकन के सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने योग्य है। एक स्त्री का ऐसा चित्र जिसमें वह पूजन सामग्री को एक हाथ में लिए हुए मंदिर को आरही है और उसका एक पैर सीढ़ी पर रखने के लिए उठा हुआ है अधिक स्वाभाविक नहीं होगा। इसी प्रकार धनुष चढ़ाते समय तीर छोड़ने से ठीक पहले की अवस्था का चित्रण या बन्दूक के घोड़े पर उँगली रखे हुए अवस्था का चित्रण करना ठीक नहीं है। क्योंकि वह अवस्था पल भर की है और देखने वाले उसे अधिक समय तक देखते रहना ठीक नहीं समझते।

गीता के भगवान] [चित्रकार—एम० के० वर्मा

चित्र नं० ६४

इसी प्रकार सुन्दर आकृतियों के चित्रण से ही चित्र में सुन्दरता नहीं आती। एक कुरूप माता में भी जिसकी आँखें छोटी नाक चपटी, माथा पतला तथा गर्दन छोटी है तथा शरीर असुन्दर है मातृभाव का सफल प्रदर्शन किया जा सकता है।

अन्त में, काल्पनिक चित्रण के विषय में कोई नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते। यदि चित्रकार ने भाव-विभोर होकर चित्र की रचना की है तो उसमें अवश्य ही सौन्दर्य होगा और अंकन-सम्बन्धी त्रुटि होने पर भी वह दर्शक को अपनी ओर आकर्षित करेगा।